शरीर-विज्ञानम्।

(प्रथमो भागः)

वाराणसी-हिन्दूविश्वविद्यालयायुर्वेदाध्यापक-कविराज श्रीनिशिकान्त-वैद्यशास्त्रि-विरचितम्।

काशीधाम-

महामण्डल यन्त्रे श्रीअक्षयकुमार मुखोपाध्याय-महाशयेन मुद्रितम्।

सन् १९२८

मूल्यं सार्द्धरूप्यकम् १॥)

विज्ञापन।

कविराज श्रीयुक्त निशिकान्त वैद्यशास्त्रि विरचित निम्नलिखित पुस्तक निम्नलिखित पते से मिल सक्ती है।

१। रोग-विज्ञानम् मूल्य १)
(विजयरक्षित कृत पञ्चलक्षण का बङ्गानुवाद)

२। शरीर-विज्ञानम् मूल्यम् ३) रु०
(मूल और हिन्दी अनुवाद सहित)

३। शरीर-विज्ञानम् (प्रथमोभागः) मूल्यम् १॥)

४। शरीर-विज्ञानम् (द्वितीयभागः) मूल्यम् १॥)

५। शरीर-विज्ञान। मूल्य १) रु०
(बङ्गानुवाद)

पुस्तक मिलने का पता।

१। बुकडिपो, वाराणसी हिन्दू-विश्व-विद्यालय।

२। काशी आयुर्वेद-महिला-विद्यालय।
नं० ५६ सोनारपुरा, बनारस सिटी।

३। नं० १२१ पाण्डेहौली, बनारस सिटी।
(ग्रन्थकार के पास)

—

विज्ञापन ।

शरीर-विज्ञानम् ।

मानव-शरीर का उपादानभूत रसादि सात धातुओं का विशेष विवरण इस पुस्तक में लिखित है। यह केवल वैद्य और चिकित्साशास्त्राध्यायियों के लिये नितान्त आवश्यकीय ग्रन्थ है ऐसा ही नहीं परन्तु हरएक गृहस्थ का भी परम आदर और यत्न का सामग्री है। विशुद्ध शुक्र और आर्तव-शोणित के सहयोग से ही गर्भोत्पादन होता है। किस प्रकार से शुक्र धातु की शुद्धि और पुष्टि होती है किस प्रकार से वा आर्तव-शोणित की विशुद्धता रक्षा होती है, पितामाता इच्छा और प्रयत्न करने से किस प्रकार से ही वा सुसन्तान लाभ कर सकते हैं यह सकल विषय विशद भाव से इस पुस्तक में वर्णित किया गया है। वास्तव में प्रत्येक अध्याय ही ऐसा युक्ति-मूलक अत्यावश्यकीय बातों से परिपूरित है कि सहृदय पाठक इसके ऊपर ध्यान देवें तो परम लाभ उठावेंगे इसमें विन्दुमात्र भी सन्देह का कोई कारण नहीं है। यह पुस्तक चतुर्दश अध्याय में संपूर्ण है। पञ्चम अध्याय

विज्ञापन।

विज्ञापन।

शरीर-विज्ञानम्।

मानव-शरीर का उपादानभूत रसादि सात धातुओं का विशेष विवरण इस पुस्तक में लिखित है। यह केवल वैद्य और चिकित्साशास्त्राध्यायियों के लिये नितान्त आवश्यकीय ग्रन्थ है ऐसा ही नहीं परन्तु हरएक गृहस्थ का भी परम आदर और यत्न का सामग्री है। विशुद्ध शुक्र और आर्त्तव-शोणित के सहयोग से ही गर्भोत्पादन होता है। किस प्रकार से शुक्र धातु की शुद्धि और पुष्टि होती है किस प्रकार से वा आर्त्तव-शोणित की विशुद्धता रक्षा होती है, पितामाता इच्छा और प्रयत्न करने से किस प्रकार से ही वा सुसन्तान लाभ कर सकते हैं यह सकल विषय विशद भाव से इस पुस्तक में वर्णित किया गया है। वास्तव में प्रत्येक अध्याय ही ऐसा युक्ति-मूलक अत्यावश्यकीय बातों से परिपूरित है कि सहृदय पाठक इसके ऊपर ध्यान देवें तो परम लाभ उठावेंगे इसमें विन्दुमात्र भी सन्देह का कोई कारण नहीं है। यह पुस्तक चतुर्दश अध्याय में संपूर्ण है। पञ्चम अध्याय

तक प्रथम भाग में छपा है, बाकी द्वितीय भाग में छप रहा है।

द्वितीय भाग में हिन्दूशारीर-शास्त्र का (Anatomy) वर्णन है। चतुर्दश अध्याय में अरिष्ट लिङ्गों के (जिन चिह्नों के प्रकट होनेपर अवश्य ही मृत्यु होती है) विषय में उल्लेख है।

यह ग्रन्थ आयुर्वेदीय विद्यार्थियों के लिये काशी आयुर्वेदसम्मिलनी प्रभृति राष्ट्रीय संस्थाओं में पाठ्यरूप से निर्दिष्ट हुआ है। यह 'शरीर-विज्ञानम्' नामक ग्रन्थ का प्रथम भाग की कीमत १॥) रु०, द्वितीय भाग का मूल्य १॥) रुपया है। जो एक साथ दोनों भाग लेंगे उनको सम्पूर्ण ग्रन्थ २॥) रुपया में मिलेगा। प्रेस-मुद्रण त्रुटियां के लिये लेखक क्षमा प्रार्थी है क्योंकि प्रेस-विभ्रम दुर्निवार्य है। इत्यलम्पल्लवितेन।

विनीत—

ग्रन्थकार।

काशीधाम।

ता० २३ पौष १९७८ (७। १। १९२२ ई०)

'Sariravijnanam' by Kaviraj Nishikantaji is a very useful book. It has cost much labour on the author's part and deserves appriciation from all who happen to read it.

Sd. RAMAVATAR SARMA (M. A.)
SAHITYACHARYA.
PRINCIPAL

of the College of Oriental Learning and the member of the Senate, Syndicate, Faculties, Boards of studies and of the Council of the Benares Hindu University. Dated the 7th January 1922.

'Kaviraj Nishikantaji's 'Sariravijnanam' is an unique attempt to present in a concise and scientific form, a knowledge of human Anatomy and Physiology based on the Hindu Ayurvedic Shastras. It is a matter for congratulation to find that the scholars of the staff of the College of Oriental Learning in the Benares Hindu University are doing such useful work under the inspiration of that patron of letters, Pandit Madanmohan Malaviya, the Vice-Chancellor of the Benares Hindu University.

Sd. K, C. CHATTERJEE, M. A.
Professor, and Member of the
Faculty of Arts and Board of studies
of the Benares Hindu University.
7-1-22.

प्रशंसापत्रम् ।

कविराज श्रीनिशिकान्त वैद्यशास्त्रि विरचित 'शरीर-विज्ञानम' नामक ग्रन्थ को पढ़कर अति प्रसन्न हुये हैं। हमलोग आशा करते हैं कि यह ग्रन्थ सुधी और छात्र समाज में आदरणीय होगा। साधारण गृहस्थ भी इस पुस्तक से लाभ उठावेंगे। यह पुस्तक आयुर्वेदीय पाठ्य रूप से निश्चय होना उचित है। श्रीमान् वैद्य-शास्त्रीजी का उत्साह और परिश्रम को हमलोग मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा करते हैं। श्रीमान् आयुर्वेदीय ग्रन्थों के प्रचुर प्रचार और प्रणयन से यशस्वी होकर दीर्घजीवन लाभ करें यह प्रार्थना सतत विश्वनाथजी से करते हैं। इति।

महामहोपाध्याय कविराज श्रीगणनाथ सेन—एम० ए० एल्० एम० एस० । (कलकत्ता)

कविराज श्रीश्यामादास वाचस्पति । (कलकत्ता)

वैद्यरत्न श्री योगीन्द्रनाथ सेन एम० ए० कविभूषण । (कलकत्ता)

वैद्याचार्य्य कविराज श्रीप्रसन्नकुमारसेन कविरत्न (बरिशाल)

कविराज श्री उमाचरण कविरत्न । (काशी)

(Member of the Senate and the Board of Studies and the Faculties of the Hindu University.)

श्रीधर्मदास कविराज । (काशी)

(Member of the Faculties and Board of Studies, Hindu University.)

कविराज श्रीभवानाप्रसाद कविरञ्जन, सभापति,

काशी आयुर्वेद-सम्मिलनी ।

कविराज श्रीमोहिनीमोहन काव्यतीर्थ आयुर्वेदरत्न ।

(अध्यक्ष, आयुर्वेद-सम्मिलनी कालिज ।)

कविराज श्रीयतीन्द्रनाथ काव्यतीर्थ कविरत्न ।

(अध्यापक, आयुर्वेद-सम्मिलनी कालिज ।)

महामहोपाध्याय कविसम्राट् पण्डित श्रीयादवेश्वरतर्करत्न

Member of the Senate and the Court, Hindu Univeasity,

महामहोपाध्याय पण्डित श्रीप्रमथनाथ तर्कभूषण । (काशी)

महामहोपाध्याय पण्डित श्रीअन्नदाचरण तर्कचूड़ामणि

(षड्दर्शनभाष्यकार, दर्शनाध्यापक,

हिन्दूविश्वविद्यालय, बनारस) ।

महामहोपाध्याय पण्डित श्रीजयदेव मिश्र

(व्याकरणाध्यापक, हिन्दू विश्व विद्यालय)

महामहोपाध्याय पण्डित श्रीवामाचरण न्यायाचार्य

(दर्शनाध्यापक, कुइन्सकालिज, बनारस ।)

पण्डित श्रीपञ्चानन तर्करत्न (भट्टपल्ली) ।

प्रशंसापत्रम् ।

कविराज श्रीनिशिकान्त वैद्यशास्त्रि विरचित 'शरीर-विज्ञानम' नामक ग्रन्थ को पढ़कर अति प्रसन्न हुये हैं। हमलोग आशा करते हैं कि यह ग्रन्थ सुधी और छात्र समाज में आदरणीय होगा। साधारण गृहस्थ भी इस पुस्तक से लाभ उठावेंगे। यह पुस्तक आयुर्वेदीय पाठ्य रूप से निश्चय होना उचित है। श्रीमान् वैद्य-शास्त्रीजी का उत्साह और परिश्रम को हमलोग मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा करते हैं। श्रीमान् आयुर्वेदीय ग्रन्थों के प्रचुर प्रचार और प्रणयन से यशस्वी होकर दीर्घजीवन लाभ करें यह प्रार्थना सतत विश्वनाथजी से करते हैं। इति।

महामहोपाध्याय कविराज श्रीगणनाथ सेन—एम० ए० एल० एम० एस० । (कलकत्ता)

कविराज श्रीश्यामादास वाचस्पति । (कलकत्ता)

वैद्यरत्न श्री योगीन्द्रनाथ सेन एम० ए० कविभूषण । (कलकत्ता)

वैद्याचार्य्य कविराज श्रीप्रसन्नकुमारसेन कविरत्न (वरिशाल)

कविराज श्री उमाचरण कविरत्न । (काशी)

(Member of the Senate and the Board of Studies and the Faculties of the Hindu University.)

श्रीधर्मदास कविराज । (काशी)

(Member of the Faculties and Board of Studies, Hindu University.)

कविराज श्रीभवानीप्रसाद कविरञ्जन, सभापति,
काशी आयुर्वेद-सम्मिलनी ।

कविराज श्रीमोहिनीमोहन काव्यतीर्थ आयुर्वेदरत्न ।
(अध्यक्ष, आयुर्वेद-सम्मिलनी कालिज ।)

कविराज श्रीयतीन्द्रनाथ काव्यतीर्थ कविरत्न ।
(अध्यापक, आयुर्वेद-सम्मिलनी कालिज ।)

महामहोपाध्याय कविसम्राट् पण्डित श्रीयादवेश्वरतर्करत्न
Member of the Senate and the Court, Hindu Univeasity,

महामहोपाध्याय पण्डित श्रीप्रमथनाथ तर्कभूषण । (काशी)

महामहोपाध्याय पण्डित श्रीअन्नदाचरण तर्कचूड़ामणि
(षड्दर्शनभाष्यकार, दर्शनाध्यापक,
हिन्दूविश्वविद्यालय, बनारस) ।

महामहोपाध्याय पण्डित श्रीजयदेव मिश्र
(व्याकरणाध्यापक, हिन्दूविश्वविद्यालय)

महामहोपाध्याय पण्डित श्रीवामाचरण न्यायाचार्य
(दर्शनाध्यापक, कुइन्सकालिज, बनारस ।)

पण्डित श्रीपञ्चानन तर्करत्न (भट्टपल्ली) ।

कविराज श्रीहरिदास रायचौधुरी भिषगाचार्य, काशी।

महोपाध्याय पण्डित श्रीगुरुप्रसन्नवेदान्तशास्त्री एम० ए०
(वेदधर्माध्यापक, ढाकाविश्वविद्यालय ।)

पण्डित श्रीफणिभूषण तर्कवागीश, काशी ।

पण्डित श्रीश्रीशंकर तर्करत्न (अध्यक्ष, रावलदास चतुष्पाठी, काशी ।)

श्रीश्यामाचरण कविरत्न (कलिकता ।)

पण्डित श्रीचिन्नस्वामी वेदविशारद (मीमांसाध्यापक, हिन्दूविश्वविद्यालय ।)

पण्डित रामयत्न ओझा ज्योतिषाचार्य्य (ज्योतिषाध्यापक हिन्दूविश्वविद्यालय।)

प्रोफेसर प्राणनाथ विद्यालंकार (इतिहासाध्यापक, संस्कृत-कालेज, हिन्दूविश्वविद्यालय ।)

पण्डित अम्बादास शास्त्री (आफिसियेटिङ्ग प्रिन्सिपल, प्राच्य विद्याविभाग, हिन्दूविश्वविद्यालय ।)
(Member of the Senate and the Faculties and Board of Studies, Hindu University.)

पण्डित प्रभुदत्त अग्निहोत्री (प्रिन्सिपल, कालिज आफ थियोलोजी, हिन्दूविश्वविद्यालय ।)
(Member of the Senate and the Faculties and Board of Studies, Hindu University.)

प्रोफेसर श्यामाचरण डे० एम० ए० (रजिस्ट्रार, हिन्दू विश्वविद्यालय ।)

(Member of the Senate and the Syndicate and of the Council, Benares Hindu University.)

श्रीज्ञानेन्द्रनाथ बसु (वाराणसी हिन्दूविश्वविद्यालय-कौंसिल सदस्य ।)

श्रीशिरीषचन्द्र (डे) (इम्प्लाक् आफिसर काशीनरेश स्टेट ।)

डाक्टर श्रीअमूल्यधन मुखोपाध्याय एम० डी०, डी० एम० टी० [लण्डन और न्यूयार्क (नार्भस्पोसियालिष्ठ)]

डाक्टर शी, शी, घोष बी० ए० एल० आर० सी० पी० एल० आर० सी० एस० (एडिन) एल० आर० एफ० पी० एस० (ग्लासगो) एल० एम० (डब्लिन) भूतपूर्व सीनियर हाउससर्जन किङ्गजर्ज मेडिकल कालेज, लखनऊ, भूतपूर्व प्रधान मेडिकल आफिसर कुमायन फ्रान्स लेवर कोर ।

सूचीपत्र ।

पृष्ठाङ्क

पृष्ठाङ्क

पृष्ठाङ्क

पृष्ठाङ्क

पृष्ठाङ्क

श्रीश्रीशिवायनमः।

शरीर-विज्ञानम्।

प्रथमोऽध्यायः।

अथ भूतादिविज्ञानीयाध्यायं व्याख्यास्यामः।

पञ्चात्मकं पञ्चसु वर्त्तमानं
षडाश्रयं षड्गुणयोग-युक्तम्।
तत् सप्तधातु त्रिमलं द्वियोनि
चतुर्विधाहारमयं शरीरम्॥

मायासंक्रान्तकामं भवनिलयलयानन्तरूपं गदघ्नं
पूर्णं स्वास्थ्यप्रदं तं त्रिभुवनपितरं जन्मदुःखैकनाशम्॥
रागद्वेषादिशून्यं सुरनरशरणं शश्वदारोग्यकन्दं
सान्द्रानन्दस्वरूपं सुविमलरुचिरं वैद्यनाथं नमामि॥

अथ गर्भस्य मातापित्रोः शरीरापेक्षत्वात् प्रथमं शरीरस्वरूपमाह—पञ्चात्मकमिति। पञ्चात्मकं पञ्चभूतात्मकं, पञ्चसु धारणादिषु शब्दादिष्वानन्दादिषु च वर्त्तमानं प्रवर्त्तमानमित्यर्थः। षडाश्रयं षण्णां मधुरादिरसानामाश्रयःभोगायतनमित्यर्थः। षड्गुणयोगयुक्तं गानादिकलाकुशलत्वादिति। सप्त धातवो

रसादयो यस्मिन् तत् सप्तधातु। त्रिमलं कफादीनां श्लेष्मादिरूपाणां मलत्वम्, मलिनीकरणान्मलाः, शरीरदूषणाद्दोषा इत्यायुर्वेदशास्त्रसिद्धान्तात् प्राप्तमिति । द्वियोनि द्वयोर्मातापित्रोर्योनिरुत्पत्तिर्यस्य तत् । चतुर्विधाहारमयं चर्व्यचोष्य-लेह्य-पेयचतुर्विधाहार-विकारमयं शरीरमित्यर्थः ॥

अस्मिन् शास्त्रे पञ्चमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुष इत्युच्यते । तस्मिन् क्रिया, सोऽधिष्ठानम् । कस्मात् ?

मानव देह पञ्चभूतात्मक है अर्थात् क्षिति, अप्, तेज, वायु और व्योम इन्हीं ५ भूतों से बना हुआ है। पञ्चविध धारणा और आनन्द प्रभृतिओं के लिए यह शरीर प्रवर्तमान है। यह शरीर षडाश्रय है अर्थात् मधुरादि छः रसों से आश्रित है सुतरां भोगायतन है। यह शरीर रसादि सप्तधातु विशिष्ट है, वातादिमलों से परिपूर्ण है। शरीरको मलीन करता है इस लिये आयुर्वेद शास्त्रमें वातादिकों को मल कहते हैं। मातृ पितृ योनि से इस शरीर की उत्पत्ति है और चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेयरूप चतुर्विधि आहार सामग्री का विकार है ।

इस आयुर्वेदशास्त्र में पृथिव्यादि पञ्च महाभूत और आत्मा का समवाय सम्बन्ध (संयोग विशेष)

लोकस्य द्वैविध्यात् । लोको हि द्विविधः स्थावरो जङ्गमश्च । द्विविधात्मक एवाग्नेयः सौम्यश्च तद्भूयस्त्वात्, पञ्चात्मको वा ॥ १ ॥

पुरुष नाम से कहा गया है । वह पुरुष में ही क्रिया (शास्त्रोदित कर्म्म) कही गई है अर्थात् भेषज, शस्त्र, क्षार, और अग्निप्रयोग से स्वास्थ्य का सम्पादन किया गया है । क्योंकि वह पुरुष ही स्वास्थ्य और व्याधि यह दोनों के ही अधिष्ठान अर्थात् आश्रय है । जगत् स्थावर और जङ्गमात्मक होने से पुरुष ही स्वास्थ्य और व्याधि का आश्रय है । लोक अर्थात् संसार दो प्रकार का है यथा स्थावर और जङ्गम, वृक्षादि स्थावर और मनुष्यादि जङ्गम कहे जाते हैं । यह स्थावर जङ्गात्मक जगत् पुनः चिकित्सोपयोगी धर्म्मभेद से दो प्रकार का हैं इसी लिये जगत् को अग्निषोमीय कहते हैं । अथवा पदार्थ में ही जब पञ्चभूतों का सान्निध्य अर्थात् अस्तित्व है तब संसार को द्विविधात्मक होने पर भी इसको पञ्चभूतात्मक कहते हैं । पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, और आकाश ये पांच पदार्थों को पञ्चभूत कहते हैं ॥ १ ॥

तत्र पञ्चात्मके शरीरे यत्कठिनं सा पृथिवी, यद्द्रवं ता आपः, यदुष्णं तत्तेजः, यत्सञ्चरति स वायुः, यत् सुषीरं स आकाशः । तत्र पृथिवी धारणे, आपः पिण्डीकरणे, तेजः प्रकाशने, वायुर्व्यूहने, आकाशोऽवकाशप्रदाने च । श्रोत्रे शब्दोपलब्धौ, त्वक् स्पर्शे, चक्षुषी रूपे, जिह्वा

इस पञ्चभूतात्मक देह में जो कठिन भाग है उसको पृथ्वी जानना, द्रव अर्थात् तरल भाग जल है, उष्णांश तेज है, सञ्चरणशील जो अंश वह वायु है, और जो भाग छिद्रसा है वह शरीर का अवकाश अर्थात् आकाश है । ये पृथिव्यादि पञ्चभूतों के बीच में पृथ्वी से शरीर का धारण, जल से शारीरिक पदार्थों के संपिण्डी करण, तेज से प्रकाश, वायु से शारीरिक पदार्थों के व्यूहन अर्थात् मिलन, और आकाश से शरीर का अवकाश संपादन होता है । शरीराभ्यन्तरस्थ श्रवण युगल से शब्द की उपलब्धि, त्वचा से स्पर्शज्ञान, नेत्र-युगल से रूप ग्रहण, रसना से रस का स्वाद नाशिका से गन्धग्रहणोपलब्धि, उपस्थ (लिङ्ग) से आनन्द होता है । अपान नामक वायु से मलादिकों का उत्सर्ग अर्थात् गुदा मार्ग से बहिः निस्सरण, बुद्धि से सर्व विषय

रसने, नासिका घ्राणे, उपस्थ आनन्दने, अपानमुत्सर्गे, बुद्धा बुध्यते, मनसा संकल्पयति, वाचा बदतीति ॥ २॥

अस्थि मांसं नखञ्चैव त्वग्लोमानि च पञ्चमम् ।
पृथ्वी पञ्चगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषते ॥ ३ ॥

शुक्र-शोणित-मज्जा च मलमूत्रञ्च पञ्चमम् ।
अपां पञ्च गुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषते ॥ ४ ॥

निद्रा क्षुधा तृषा चैव क्रान्तिरालस्यपञ्चमम् ।
तेजःपञ्चगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषते ॥ ५ ॥

धारणञ्चालनं क्षेपः सङ्कोचः प्रसरस्तथा ।
वायोः पञ्चगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषते ॥ ६ ॥

का ज्ञान, मन से मनन अर्थात् संकल्प साधन, और वागिन्द्रिय से भाषण क्रिया निष्पन्न होती है ॥ २ ॥

अस्थि, मांस, नख, त्वचा, और बाल ये पांच वस्तु पृथ्वी का गुण है ॥ ३ ॥

शुक्र, रक्त, मज्जा, मल (पुरीष) और मूत्र, ये पांच गुण जल के हैं ॥ ४ ॥

निद्रा, क्षुधा, तृष्णा, क्रान्ति और अलसाना, ये पांच तेज अर्थात् अग्नि के गुण हैं ॥ ५ ॥

धारण, चालन, क्षेपण, और संकोचन ये पांच वायु के गुण हैं ॥ ६ ॥

कामं क्रोधं तथा मोहं लज्जा लोभञ्च पञ्चमम् ।
नभः पञ्चगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषते ॥ ७ ॥
आकाशाज्जायते वायुः वायोरुत्पद्यते रविः ।
रवेरुत्पद्यते तोयं तोयादुत्पद्यते मही ॥ ८ ॥
मही विलीयते तोये तोयं विलीयते रवौ ।
रविर्विलीयते वायौ वायुर्विलीयते तु खे ॥ ९ ॥
स्पर्शनं रसनञ्चैव घ्राणं चक्षुश्च कर्णकम् ।
पञ्चेन्द्रियमिदं तत्वं मनः षष्ठान्यदिन्द्रियम् ॥ १० ॥
षड्धातवः समुदिताः पुरुष इति शब्दं लभन्ते, तद्यथा

काम, क्रोध, मोह, लज्जा, और लोभ ये पांच आकाश के गुण हैं ॥ ७ ॥

आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, और जल से पृथिवी की उत्पत्ति है ॥ ८ ॥

पृथ्वी जल में, जल अनल में, अनल अनिल में और अनिल आकाश में लीन होता है ॥ ९ ॥

स्पर्शन, रसन, आघ्राण, दर्शन, तथा श्रवण ये पांच इन्द्रिओं का पांच तत्त्व है । मन यह सब इन्द्रिओं का कारण है ॥ १० ॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, और अव्यक्त

पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशं ब्रह्म चाव्यक्तमित्येतदेव च षड्धातवः समुदिताः पुरुष इति शब्दं लभन्ते। तस्य पुरुषस्य पृथ्वी मूर्तिः, आपः क्लेदः, तेजोऽभिसन्तापः, वायुः प्राणः, वियत् सुषीराणि, ब्रह्मान्तरात्मेति ॥ ११ ॥

षडाश्रयः शरीरमिति,कस्मात्,मधुराम्ललवणकटुतिक्त-कषायरसान् विन्दतीति। षड्जर्षभगान्धारमध्यमपञ्चम-निषादा इति षड्गुणयुक्तत्वात् षड्गुणयोगयुक्तं शरीर-मुच्यते, एते गायनेषु प्रसिद्धाः ॥ १२ ॥

श्रीरागोऽथ वसन्तश्च पञ्चमो भैरवस्तथा।
मेघनादश्च विज्ञेयः षष्ठो नटनारायण इति ॥

ब्रह्म (आत्मा) ये षट् धातु मिलित होकर लोक शब्द को प्राप्त होते हैं। पृथ्वी पुरुष की मूर्ति, जल पुरुष का क्लेद, तेज पुरुष का सन्ताप, वायु पुरुष का प्राण, आकाश पुरुष का छिद्रसमूह और ब्रह्म पुरुष का अन्तरात्मा है ॥ ११ ॥

देह से (देहोपलक्षित जिह्वा से) मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, और कषाय इन छः रसों का ज्ञान होता है, इस लिए देह को षडाश्रय कहा है। १२ ॥

श्रीराग, वसन्त, पञ्चम, भैरव, मेघनाद, और नट-

तेषां प्रत्येकं सप्तस्वरा भवन्ति, षट्च षट्च रागिण्यो देश्यः स्त्रियो भवन्तीति षट्त्रिंशत् ज्ञेयाः ॥ १३ ॥

ता यथा—

गौड़ी कोलाहला धाली द्राविड़ी मालवकौशिका ।
षष्ठी स्यादेव गान्धारी श्रीरागाच्च विनिर्गताः ॥ १४ ॥
आदोली कौशिकी चैव रामगरी पुटमञ्जरी ।
गुड्डरी चैव देशाख्या वसन्तस्य प्रियास्त्विमाः ॥ १५ ॥
भैरवी गुर्जरी चैव भाषा वेलवती तथा ।
कर्णाटी रक्तसिंहा च पञ्चमाच्च विनिर्गताः ॥ १६ ॥

नारायण ये छः राग हैं। इसका प्रत्येक राग सप्त स्वर विशिष्ट होकर छः छः कर के ३६ रागिनी युक्त होती हैं ॥१३॥

गौड़ी, कोलाहली, धाली, द्राविड़ी, मालवकौशिका और गान्धारी ये छः रागिनी श्रीराग से उत्पन्न हुई हैं ॥ १४ ॥

आदोली, कौशिकी, रामगरी, पुटमञ्जरी, गुड्डरी और देशाख्य ये छः रागिनी वसन्त राग से विनिर्गत हुई है ॥ १५ ॥

भैरवी, गुर्जरी, भाषा, वेलवती कर्णाटी और रक्त-सिंहा ये छः रागिनी पञ्चम राग से उत्पन्न हुई है ।१६॥

त्रिगुणा स्तम्भतीर्थी च आभीरी कुकुभा तथा ।
विराडी चैव साकेरी भैरवाच्च विनिर्गताः ॥ १७ ॥
वाङ्गाला मधुराचैव कामदा चोपमादिका ।
कम्बुग्रीवा च देवाला मेघरागाद्विनिर्गताः ॥ १८ ॥
नाटिका चाथ भूपाली रामकेली गड़ा तथा ।
कामदा चापि कल्याणी जाता नदनरायणात् ॥ १९ ॥

इति तेषां मिथुनानां योगोऽस्मिन् शरीरे भवतीति षड्गुणयोगयुक्तं शरीरमित्यर्थः ॥ २० ॥

त्रिगुणा, स्तम्भतीर्थी, आभीरी, कुकुभा, विराडी और साकेरी ये छः रागिनी भैरव राग से उत्पन्न हुई है ॥ १७ ॥

वाङ्गाला, मधुरा, कामदा, उपमादिका, कम्बुग्रीवा और देवाला, ये छः रागिनी मेघराग से निर्गत हुई है ॥ १८ ॥

नाटिका, भूपाली, रामकेली, गड़ा, कामदा और कल्याणी ये छः रागिनी नदनरायण राग से उत्पन्न हुई हैं ॥ १९ ॥

इस प्रकार उक्त रागिनी का परस्पर योग से शरीर षड्गुण योग युक्त हुआ है ॥ २० ॥

ननु पृथिव्यादीनां वृत्तयो धारणादयस्तत्र: पञ्चका उक्तास्ते किं सर्वे पुरुषस्य प्रवृत्तिनिवृत्तिभ्यामुपयुज्यन्ते आहोस्वित् कतिपय इति संशये निर्णयमाह—इष्टानिष्टानीति । धारणादिषु इष्टानिष्टानि प्रवृत्तिहेतुभूतानि दश विधानि भवन्ति ॥ २१ ॥

आकाश-पवन-दहन-तोय-भूमिषु यथासंख्यमेकोत्तर-परिवृद्धा: शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धास्तस्मादाप्यो रस: ।

अपि च (और भी) उक्त हुआ है कि क्षित्यादि भूतपञ्चक का पञ्च विधधारणा विद्यमान है । अच्छा, यह समुदाय क्या पुरुष की प्रवृत्ति और निवृत्ति का हेतु है अथवा एक एक वृत्ति ही हेतु होता है ? यह प्रश्न की मीमांशा यह है कि भूतपञ्चक की धारणादि वृत्तियों के बीच में १० प्रकार की इष्टानिष्ट वृत्तियां वर्तमान हैं अगर न होता तो उक्त वृत्ति समुदाय प्रवृत्ति निवृत्ति का उत्पादक नहीं हो सकता । सुतरां वे वृत्तियें इष्टानिष्ट भेद से १० प्रकार के हैं ॥ २१ ॥

आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी ए सकल पदार्थ एकोत्तर प्रवृद्ध होकर यथाक्रम से शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध उत्पन्न होता है अर्थात् शब्द गुण आकाश,

परस्परसंसर्गात् परस्परानुग्रहात् परस्परानुप्रवेशाच्च सर्वेषु सर्वेषां सान्निध्यमस्ति उत्कर्षापकर्षात्तु ग्रहणम् ॥ २२ ॥

आप्यएव रसः शेषभूतसंसर्गाद्विदग्धः षोढा विभज्यते ।

शब्द-स्पर्श गुण वायु, शब्द-स्पर्श-रूप गुण तेजः, शब्द-स्पर्श रूप रस गुण जल और शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध गुण पृथ्वीगुणविशिष्ट पृथ्वी होती है समुदाय द्रव्य में भी आकाशादि पञ्चभूतों का ही सानिध्य अस्तित्व विराजमान है तब जिस वस्तु में जिस भूत का आधिक्य रहता है उसी को तद्भूतज कहते हैं। भूत सकल परस्पर संयुक्त है, परस्पर उपकृत और परस्पर अनुप्रविष्ट हो कर पदार्थ में अवस्थान कर रहे हैं। भूत समुदाय के उत्कर्षापकर्षानुसार से अर्थात् वृद्धि और ह्रासानुसार से द्रव्य का व्यपदेश होता है। इस लिए रस को आप्य (जलीय) कहते हैं। आकाशबहुल द्रव्य में शब्द गुण अधिक, तेजगुणबहुल द्रव्य में रूपगुण अधिक, पवनबहुलद्रव्य में स्पर्शगुण अधिक, जलगुणबहुल द्रव्य में रस अधिक, तथा पृथ्वीगुणबहुल द्रव्य में गन्ध अधिक है ॥ २२ ॥

. रस आप्य (जल बहुल पदार्थ) है । जल

तद्यथा-मधुराम्ल-लवण-कटु-तिक्त-कषाया इति ॥ २३ ॥

ते च भूयः परस्परसंसर्गात्रिषष्टिधा भिद्यन्ते ॥ २४ ॥

एकैकहीनास्तान् पञ्च पञ्च यान्ति रसा द्विके ।

अपने स्वभाव से अव्यक्तरस विशिष्ट होकर भी शेष भूत का अर्थात् आकाश, वायु, तेज और पार्थिव पदार्थ का संयोग से यथाकाल में परिपाचित होकर मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और कषाय ये छः रसों में परिणत होता है ॥ २३ ॥

वे फिर मधुरादि षट्रसों के परस्पर संसर्ग से ६३ प्रकार में विभक्त होते हैं ॥ २४ ॥

मधुरादि छः रस द्विक संयोग से अर्थात् दो दो रसों के संयोग से क्रम से एक एक रसहीन होकर १५ प्रकार के योग होते हैं। इसके बीच में मधुर रस ५ प्रकार, मधुर रस को छोड़ कर अम्ल रस चार प्रकार, मधुर और अम्ल रस को छोड़ कर लवण रस ३ प्रकार, मधुर अम्ल और लवण रस को को छोड़कर तिक्तरस दो प्रकार और मधुरादि रस चतुष्टय को छोड़ कर कटुरस एक प्रकार समुदाय में १५ प्रकार के संयोग होते हैं त्रिक संयोग से एक २ रसहीन

त्रिके स्वादुर्दशाम्लः षट् त्रीन् पटुस्तिक्त एककम् ॥ २५ ॥
चतुष्केषु दश स्वादुश्चतुरोऽम्लः पटुः सकृत् ।
पञ्चकेष्वेकमेवाम्लो मधुरः पञ्च सेवते ।
द्रव्यमेकं षडास्वादमसंयुक्ताश्च षड्रसाः ॥ २६ ॥
षट् पञ्चकाः षट् च पृथग् रसाः स्युश्चतुर्द्विकौ पञ्चदश-प्रकारौ ।

हो कर मधुर रस को १० प्रकार के संयोग, अम्लरस छः प्रकार का, लवण रस के ३ प्रकार के और तिक्तरस का एक प्रकार के संयोग होकर २० प्रकार संयुक्त होता है ॥ २५ ॥

चतुष्करस संयोग से एक २ रसहीन होकर मधुर रस १० प्रकार के संयोग, अम्ल रस का चार प्रकार के और लवण रस का एक प्रकार का संयोग होकर समुदाय में १५ प्रकार के होते है। पञ्चक संयोग से मधुर रस ५० प्रकार के और अम्लरस एक प्रकार का होता है। मधुरादि षड्रस के सम्मिलन में ५६ प्रकार रस के सिवाय असंयुक्त रस और छः प्रकार के होकर समुदाय में ६३ प्रकार की रस कल्पना होती है ॥ २६ ॥

पञ्चक रस का योग ६ प्रकार का होता है तथा असंयुक्त रस ६ प्रकार के, चतुष्क रस संयोग १० प्रकार

भेदास्त्रिकाविंशतिरेवमेकं द्रव्यं षडास्वादमिति त्रिषष्टिः ॥२७॥

तत्रभूम्यम्बुगुणबाहुल्यान्मधुरः । तोयाग्नि-गुणबाहुल्यादम्लः । भूम्याग्निगुणबाहुल्याल्लवणः । वाय्वाकाशगुणबाहुल्यात्तिक्तः । पृथिव्यानलगुणबाहुल्यात्कषाय इति ॥ २८॥

धराम्बु-क्ष्मानल-जल-ज्वलनाकाश-मारुतैः ।
वाय्वग्निक्ष्मानिलैर्भूतद्वयैरसभवः क्रमात् ॥ २६ ॥

के, द्विक रस संयोग १५ प्रकार के त्रिक संयोग २० प्रकार के इसी प्रकार से ६ रस मिलित होकर समुदाय में ६३ प्रकार रस कल्पित होता है ॥ २७ ॥

भूमि और जलगु के आधिक्य से मधुर रस, जल और अग्निगुण की अधिकता से अम्लरस, पृथ्वी और अग्नि गुण की अधिकता से लवण रस, वायु और आकाश गुण के आधिक्य से तिक्तरस, और पृथ्वी तथा वायु गुण की अधिकता से कषाय रस उत्पन्न होता है ॥ २८ ॥

ग्रन्थान्तर में उक्त हुआ है कि क्षिति व जल के संयोग से मधुर रस, क्षिति और अग्नि के संयोग से अम्लरस, जल और अग्नि कें संयोग से लवणरस, आकाश और वायु के संयोग से तिक्तरस, वायु और अग्नि के

द्रव्ये रसगुणौ वीर्य्यं विपाकः शक्तिरेव च ।
सम्वेदनक्रमादेताः पञ्चावस्थाः प्रकीर्तिताः ॥ ३० ॥

अथ वीर्य्याणि ।

वीर्य्यमुष्णं तथा शीतं प्रायशो द्रव्यसंश्रयः ।
यत्सर्वमग्निषोमीयं दृश्यते भुवनत्रये ॥
अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति वीर्य्याण्यन्यानि यान्यपि ॥ ३१ ॥

अथ विपाकः ।

त्रिधा विपाको द्रव्यस्य स्वाद्वम्लकटुकात्मकः ।

संयोग से कटुरस, तथा क्षिति और वायु के संयोग से कषाय रस उत्पन्न होता है ॥ २९ ॥

इस प्रकार दो दो भूतों के संयोग होने से क्रम से एक २ भूत उत्पन्न होता है । द्रव्य में रस, गुण, वीर्य्य, विपाक, और शक्ति (प्रभाव) ये पांच अवस्था विद्यमान है ॥ ३० ॥

उष्ण और शीत यही दो प्रकार के वीर्य्य बहुल कर द्रव्य को आश्रय करके रहते हैं । क्योंकि भुवनत्रय अग्निसोमीयात्मक दृष्टिगोचर होता है यही वीर्य्य में सान्द्र, मृदु, श्लक्ष्णादि और जो वीर्य्य अनुभूत होता है ये सब वीर्य्य इन्हीं दोनों में अन्तर्भूत जानना ॥ ३१ ॥

मिष्टः पटुश्च मधुरमम्लोऽम्लं पच्यते रसः ।
कषाय-कटु-तिक्तानां पाकः स्यात् प्रायशः कटुः ॥ ३२ ॥
शीतं वीर्य्येण यद्द्रव्यं मधुरं रसपाकयोः ।
तयोरम्लं यदुष्णाख्यं यच्चोक्तं कटुकं तयोः ॥ ३३ ॥
मधुराज्जायते श्लेष्मा पित्तमम्लाच्च जायते ।
कटुकाज्जायते वायुः कर्म्माण्येतानि पाकतः ॥ ३४ ॥

मधुर, अम्ल, और कटु ये ३ प्रकार द्रव्य का विपाक होता है। द्रव्य के परिपाक में जो रस उत्पन्न होता है उसी को विपाक कहते हैं। मधुर और लवण रस के परिपाक में मधुररस उत्पन्न होता है। अम्लरस के परिपाक में अम्लरस उत्पन्न होता है। तथा कषाय, कटु और तिक्त रस के परिपाक में बहुधा कटुरस उत्पन्न होता है ॥ ३२ ॥

जो द्रव्य रस और पाक में मधुर होता है उसको शीत वीर्य्य कहा जाता है, और रस तथा परिपाक में जो अम्ल है उसको वीर्य्य में उष्ण जानना और जो द्रव्य रस तथा पाक में कटु है उसको वीर्य्य में उष्ण जानना ॥ ३३ ॥

'मधुर पाक से कफ उत्पन्न होता है अम्लपाक

अथ प्रभावः।

प्रभावस्तु यथा धात्री लकुचस्य रसादिभिः।
समापि कुरुते दोषत्रितयस्य विनाशनम् ॥ ३५ ॥

मधुराम्ललवणा वातघ्नाः, मधुरतिक्तकषायाः पित्तघ्नाः, कटुतिक्तकषायाः श्लेष्मघ्नाश्च ॥ ३६ ॥

तत्र वायुरात्मनैवात्मा, पित्तमाग्नेयं, श्लेष्मा सौम्य इति। तएवरसाः स्वयोनिवर्धना अन्ययोनिप्रशमनाश्च ॥

से पित्त तथा कटुपाक से वायु उत्पन्न होती है इस प्रकार ३ प्रकार के पाक में ३ प्रकार कफादि दोष उत्पन्न होते हैं। ३४ ॥

आमलकी (आंमरा) रस, गुण, वीर्य्य, विपाक में लकुच के समान होकर भी अपने प्रभाव से वातादि दोषों को नाश करता है अर्थात् आमलकी त्रिदोष नाशक है लेकिन लकुच त्रिदोषवर्धक होता है ॥ ३५ ॥

रसों के मध्य में मधुर, अम्ल, तथा लवण रस वायु-नाशक है और मधुर, तिक्त तथा कषाय रस पित्तनाशक है, कटु, तिक्त, और कषाय रस कफ नाशक है ॥ ३६ ॥

वायु अपनेही अपनेका आत्मा (योनि) याने कारण है अर्थात् वायु स्वयम्भू है। पित्त आग्नेय

केचिदाहुरग्निषोमीयत्वाज्जगतो रसा द्विविधाः, सौम्या आग्नेयाश्च । तत्र मधुरतिक्तकषायाः सौम्याः कट्वम्ल-लवणा आग्नेयाः । मधुराम्ललवणाः स्निग्धाः गुरवश्च । कटुतिक्तकषाया रूक्षाः लघवश्च । सौम्याः शीता आग्नेयाश्चोष्णाः ॥ ३० ॥

तत्र शैत्यरौक्ष्यलाघववैशद्यवैष्टम्भ्यगुणलक्षणो वायुः, तस्य

अर्थात् अग्नि (तेज) पित्तका कारण है। और कफ सौम्य अर्थात् सोम पदार्थ से उत्पन्न हुआ है। मधुरादि सकल रस स्वयोनि वर्धक तथा अन्ययोनि प्रशामक है अर्थात् जो सकल कारणों से उत्पन्न होता है वही सकल कारण को बढ़ाने वाला और अन्यान्य कारण सकल का प्रशामक होता है। किसी २ का मत यह है कि अग्नि और सोम ये दोनोंही जगत् का कारण हैं। इसी से रस आग्नेय और सौम्य ये दो प्रकार के होते हैं। मधुर, अम्ल, और लवण रस ये स्निग्ध तथा गुरु होते हैं। कटु, अम्ल और लवण रस ये रूक्ष और लघु होते हैं। सौम्य रस शीतल है और आग्नेय रस को उष्ण जानना ॥ ३० ॥

वायु शैत्य, रौक्ष्य, लाघव, वैशद्य, और वैष्टम्भ्य ये

समानयोनिः कषायो रसः, सोऽस्य शैत्याच्छैत्यं वर्धयति, रौक्ष्याद्रौक्ष्यं, लाघवाल्लाघवं, वैशद्यात्वैशद्यं, वैष्टम्भ्याद्वैष्टम्भ्यमिति ॥ ३८ ॥

औष्ण्यतैक्ष्ण्यरौक्ष्यलाघववैशद्यगुणलक्षणं पित्तम्, तस्य समानयोनिः कटुको रसः, सोऽस्यौष्ण्यादौष्ण्यं वर्धयति, तैक्ष्ण्यात्तैक्ष्ण्यम्, रौक्ष्याद्रौक्ष्यम्, लाघवाल्लाघवम्, वैशद्याद्वैशद्यमिति ॥ ३९ ॥

गुणों और लक्षणों से युक्त होता है। कषायरस वायु के समान योनि है अर्थात् कषाय रस भी शैत्यादि गुण-सम्पन्न है सुतरां कषाय रस सेवित होने पर इसका ठण्डागुण से वायु की शीतलता, रौक्ष्यगुण से वायु की रूक्षता, लाघव गुणसे वायु की लघुता और वैष्टम्भ्यगुण से वायु की विष्टम्भता वर्धित होती है ॥ ३८ ॥

पित्त उष्ण, तीक्ष्ण, रूक्ष, लघु, तथा विशदगुणों से युक्त है। कटु रस पित्त के समान योनि सुतरां कटु-रस सेवित होने पर इसका उष्णगुण से पित्तका उष्णत्व, तीक्ष्णगुण से पित्तका तीक्ष्णत्व, रूक्षगुण से पित्त की रूक्षता, लाघवगुण से पित्त की लघुता तथा विशदगुण से विशदत्व की वृद्धि कर देता है ॥ ३९ ॥

माधुर्य्यस्नेहगौरवशैत्यपैच्छिल्यगुणलक्षणः श्लेष्मा, तस्य समानयोनिर्मधुरो रसः, सोऽस्य माधुर्य्यान्मधुरम् वर्धयति, स्नेहात्स्नेहम्, गौरवाद्गौरवम्, शैत्याच्छैत्यम्, पैच्छिल्यात्पैच्छिल्यमिति। तस्य पुनरन्ययोनिः कटुकोरसः, स श्लेष्मणः प्रत्यनीकत्वात् कटुकत्वान्माधुर्य्यमभिभवति, रौक्ष्यात् स्नेहम्, लाघवाद्गौरवम्, औष्ण्याच्छैत्यम्, वैशद्यात्पैच्छिल्यमिति । तदेतन्निदर्शनमात्रमुक्तम् ॥ ४० ॥

कफ मधुर, स्निग्ध, गुरु, शीत, और पिच्छिलगुणों से युक्त होता है । मधुर रस कफ के समान योनि है सुतरां मधुर रस के माधुर्य्यगुण से कफ की मधुरता, स्नेहगुण से कफ की स्निग्धता, गुरुत्वगुण से कफ की गुरुता, शैत्यगुण से कफ की शीतलता और पैच्छिल गुण से कफ की पिच्छिलता बर्द्धित होती है । कटु रस कफ के अन्य (विपरीत) योनि है सुतरां कटु रस सेवित होने पर कफ के विपरीत गुण के कारण से अर्थात् कटु रस के कटुत्व गुण के प्रभाव से कफ की मधुरता, रूक्ष गुण से कफ की स्निग्धता, लाघवगुण से कफ की गुरुता, उष्णगुण से कफ की शीतलता, और वैशद्यगुण से कफ की पिच्छिलता गुणों को अभिभूत (आच्छन्न वा लुप्त) कर देता है । ये सब उदाहरण देने के लिए कहा है ॥ ४० ॥

अथ रसलक्षणम् ॥

रसेषु मध्ये यः परितोषमुत्पादयति प्रह्लादयति तर्पयति जीवयति मुखलेपं जनयति श्लेष्माणञ्चाभिवर्धयति च मधुरः ॥ ४१ ॥

मधुरो धातुविवर्द्धन आयुर्बलवर्णतृप्तिकृत्कण्ठ्यः ।
सन्धानकृन्मुखादि ह्लादकर स्निग्धगुरुशीतः ॥ ४२ ॥
मधुरं श्लेष्मलं प्रायो जीर्णाच्छालियवादृते ।

रसों के मध्य में जो परितोष को उत्पादन करता है आह्लाद तथा तृप्तिको देता है व जीवनी शक्ति को बढ़ाता है मुखलिप्तत्व को सम्पादन करता है और कफ को बढ़ाता है वह मधुर रस है ॥ ४१ ॥

सब रसों में मधुर रस धातु वर्द्धक, आयु, बल, वर्ण को करनेवाला, कण्ठके हितकारी, घ्राण, जिह्वा कंठ, ओष्ठ, तथा उरःक्षत प्रभृति को सन्धान करनेवाला है और चिक्कना, भारी तथा शीतल है। मधुर रस, यथा-घृत, दुग्ध, गुड़, कदली, मुल्हठी, दाख, स्वर्ण इत्यादि ॥ ४२ ॥

मधुर रस प्रायः करके कफ़ जनक है परन्तु पुराने शालीधान्य, यव, गोधूम, मुद्ग, मधु, शर्करा

मुद्गाद्गोधूमतः क्षौद्रात् सिताया जाङ्गलामिषात् ॥ ४३ ॥
कुरुतेऽ त्युपयोगेन समेदःकफजान्गदान् ।
स्थौल्याग्निसादसान्न्यासमेहगण्डार्बुदादिकान् ॥ ४४ ॥

यो दन्तहर्षमुत्पादयति मुखस्रावं जनयति श्रद्धा-श्चोत्पादयति सोऽम्लः ॥ ४५ ॥

अम्लो रुचिदीप्तिकरो मनइन्द्रियबोधनो हृदयतर्पी ।
वातान्त्र्गवकृद् बल्यः कण्ठदहः स्निग्ध लघुरुष्णः ॥ ४६ ॥

और जाङ्गल मांस ये सब कफ को बढ़ानेवाले नहीं हैं ॥ ४३ ॥

मधुर रस को अधिक सेवन करने से स्थौल्य, अग्निमान्द्य, मेह, गण्ड, और अर्वुदादि ये सब रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ४४ ॥

जो रस दन्तहर्ष (दांतकोठ) को लाता है और मुखस्राव को उत्पन्न करता है, अन्नभोजन में श्रद्धा (रुचि) को उत्पन्न करता है वह अम्लरस है। यथा-आमलकी, इमली, बेर,कांजी, चान्दी इत्यादि ॥ ४५ ॥

अम्लरस रुचि को करनेवाला, अग्निदीपक, मन तथा इन्द्रिओं का बोधक, हृदयतृप्तिकारक, वायु का अनुलोमक, बलकारक, कंठमें दाहकरनेवाला तथा स्निग्ध लघु और उष्ण है ॥ ४६ ॥

करोति कफपित्तास्रं मूढवातानुलोमनम् ।
सोऽत्यभ्यस्तस्तनोः कुर्य्याच्छैथिल्यं तिमिरं भ्रमम् ।
कण्डूपाण्डुत्वविसर्पशोफ-विस्फोटतृड्ज्वरान् ॥
प्रायोऽम्लं पित्तजननं दाडिमामलकादृते ॥ ४७ ॥

यो भक्तरुचिमुत्पादयति कफप्रसेकञ्जनयति मृद्वुताञ्चो-त्पादयति स लवणः ॥ ४८ ॥

लवणः क्लेदनः पाचनो दीपनो विच्छेदनः सरस्तीक्ष्णः ।
कफविष्यन्दिरुचिकृत् स्निग्धगुरूष्णो मुखविशोधीच ॥

अम्लरस अधिक सेवन करने से शरीर की शिथिलता, तिमिर, पाण्डु, कण्डू, विसर्प, शोथ, विष्फोटक, तृष्णा, ज्वर प्रभृति रोग उत्पन्न होते हैं। बहुल करके अम्ल द्रव्यही पित्त जनक है परन्तु दाडिम, अनार, आमलकी पित्त बढ़ानेवाला नहीं है ॥ ४७ ॥

जो रस अन्न में रूचि को देता है, कफ को दूर करता है, कोमलता को सम्पादन करता है वह लवण रस जानना। यथा-सैन्धवलवण, सञ्चर लवण, विट्लवण, तथा यवक्षारादि ॥ ४८ ॥

लवण रस क्लेदक, पाचक, दीपक, विदारक, चालक, स्निग्ध, गुरु तथा उष्ण और कफ को चलानेवाला, रुचिको बढ़ानेवाला, मुख का शोधक है ॥ ४९ ॥

मुद्गाद्गोधूमतः क्षौद्रात् सिताया जाङ्गलामिषात् ॥ ४३ ॥
कुरुतेऽ त्युपयोगेन समेदःकफजान्गदान् ।
स्थौल्याग्निसादसाध्यासमेहगण्डार्बुदादिकान् ॥ ४४ ॥

यो दन्तहर्षमुत्पादयति मुखस्रावं जनयति श्रद्धा-श्चोत्पादयति सोऽम्लः ॥ ४५ ॥

अम्लो रुचिदीप्तिकरो मनइन्द्रियबोधनो हृदयतर्पी ।
वातानुलोमकृद् बल्यः कण्ठदहः स्निग्ध लघुरुष्णः ॥ ४६ ॥

और जाङ्गल मांस ये सब कफ को बढ़ानेवाले नहीं हैं ॥ ४३ ॥

मधुर रस को अधिक सेवन करने से स्थौल्य, अग्निमान्द्य, मेह, गण्ड, और अर्बुदादि ये सब रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ४४ ॥

जो रस दन्तहर्ष (दांतकोठ) को लाता है और मुहस्राव को उत्पन्न करता है, अन्नभोजन में श्रद्धा (रुचि) को उत्पन्न करता है वह अम्लरस है । यथा-आमलकी, इमली, बेर,कांजी, चान्दी इत्यादि ॥ ४५ ॥

अम्लरस रुचि को करनेवाला, अग्निदीपक, मन तथा इन्द्रिओं का वोधक, हृदयतृप्तिकारक, वायु का अनु-लोमक, बलकारक, कंठमें दाहकरनेवाला तथा स्निग्ध लघु, और उष्ण है ॥ ४६ ॥

करोति कफपित्तास्रं मूढवातानुलोमनम् ।
सोऽत्यभ्यस्तस्तनोः कुर्य्याच्छैथिल्यंतिमिरंभ्रमम् ।
कण्डूपाण्डुत्वविसर्पशोफ-विष्फोटतृड्ज्वरान् ॥
प्रायोऽम्लं पित्तजननं दाडिमामलकादृते ॥ ४७ ॥

यो भक्तरुचिमुत्पादयति कफप्रसेकञ्जनयति मार्दवञ्चो-
त्पादयति स लवणः ॥ ४८ ॥

लवणः क्लेदनः पाचनो दीपनो विच्छेदनः सरस्तीक्ष्णः ।
कफविष्यन्दिरुचिकृत् स्निग्धगुरूष्णो मुखविशोधीच ॥

अम्लरस अधिक सेवन करने से शरीर को शिथिलता, तिमिर, पाण्डू, कण्डू, विसर्प, शोथ, विष्फोटक, तृष्णा, ज्वर प्रभृति रोग उत्पन्न होते हैं। बहुल करके अम्ल द्रव्यही पित्त जनक है परन्तु दाडिम, अनार, आमलकी पित्त बढ़ानेवाला नहीं है ॥ ४७ ॥

जो रस अन्न में रुचि को देता है, कफ को दूर करता है, कोमलता को सम्पादन करता है वह लवण रस जानना। यथा-सैन्धवलवण, सञ्चर लवण, विट्लवण, तथा यवक्षारादि ॥ ४८ ॥

लवण रस क्लेदक, पाचक, दीपक, विदारक, चालक, स्निग्ध, गुरु तथा उष्ण और कफ को चलानेवाला, रुचिको बढ़ानेवाला, मुख का शोधक है ॥ ४९ ॥

सोऽतियुक्तोऽक्षपवनं खलतिं पलितं वलिम् ।
तृट्कुष्ठविषविसर्पान् जनयेत् क्षपयेद्बलम् ॥ ५० ॥
अपथ्यं लवणं प्रायश्चक्षुषोऽन्यत्र सैन्धवात् ॥ ५१ ॥

यो जिह्वाग्रं बाधते, उद्वेगं जनयति शिरोगृह्णीते
नासिकाश्च स्रावयति स कटुकः ॥ ५२ ॥

कटुरास्यं शोधयति घ्राणाक्षिविरेचनः क्रिमीन् हन्ति ।
रसनोद्वेगकृदुष्णो लघुरुक्षः कुष्ठहारी च ॥ ५३ ॥

लवण रस अधिक परिमाण से सेवित होने पर खल्वाट, केशपक्वता, वली, तृष्णा, कुष्ठ, विषदोष तथा विसर्प रोगों को उत्पन्न करता है और बलका नाश करता है ॥ ५० ॥

बहुल करके लवण रस चक्षुके लिये अहितकर होता है, परन्तु सैन्धव लवण चक्षु के लिये हितकर जानना ॥ ५१ ॥

जो रस जिह्वाके अग्रभाग को पीड़ित करता है उद्वेगको लाता है, शिरको आक्रमण करता है नासास्राव को लाता है वह कटुरस है ॥ ५२ ॥

कटुरस मुखशोधक, नासिका तथा नेत्रको विरेचक, क्रिमिहारी, जिह्वाको उद्वेग करनेवाला, उष्ण, लघु, रुक्ष, तथा कुष्ठ रोग को हरनेवाला है। यथा अद्रक, शूंठ, मरीच इत्यादि ॥ ५३ ॥

कुरुते सोऽतियोगेन तृष्णां शुक्रबलक्षयम् ।
मूर्च्छामाकुञ्चनं कम्पं कटिपृष्ठादिषु व्यथाम् ॥ ५४ ॥

कटुतिक्तञ्चभूयिष्ठमवृष्यं वातकोपनम् ।
ऋतेऽमृतापटोलीभ्यां शुण्ठीकृष्णारसोनतः ॥ ५५ ॥

यो गले चोषमुत्पादयति मुखवैशद्यं जनयति
भक्तरुचिञ्चापादयति हर्षञ्च स तिक्तः ॥ ५६ ॥

तिक्तो न रोचते स्वयमरोचघ्नो विषघ्नश्च ।
दीपनपाचनशोधनरुचः शीतलघुश्चापि ॥ ५७ ॥

कटुरस अधिक सेवन किया जायतो तृष्णा, शुक्रक्षय, बलनाश, मूर्च्छा, शरीरसंकोच, कम्प, कटी और पृष्ठ प्रभृति में अधिक वेदना उत्पन्न होती है ॥ ५४ ॥

गुरोच, पटोल, शोंठ, पीपल और लशुन को छोड़कर बहुल करके समुदाय तिक्त और कटु द्रव्य ही अत्यन्त अवृष्य तथा वायु प्रकोपक है ॥ ५५ ॥

जो रस कण्ठदेश में चोष उत्पादन करता है मुख की विरसता लाता है अन्न में रुचिको प्राप्त कर देता है और रोमाञ्च को प्रकट कर देता है वह तिक्त रस है । यथा गुडूची, सेफालिका, निम्ब, प्रभृति ॥ ५६ ॥

तिक्तरस स्वयं नहीं रुचता परन्तु अरुचि और

धातुक्षयानिलव्याधीनतियोगात् करोति सः ॥ ५८ ॥
यो वक्त्रं परिशोषयति जिह्वां स्तम्भयति
कण्ठं बध्नाति हृदयं कर्षति पीडयतिच स कषायः ॥ ५६ ॥
तुवरो हिमोरूक्षोगुरुः स्तम्भीशमनः पीतनोग्राही च ।
व्रणपाकार्त्तिक्लेदान् निहन्ति कण्ठञ्चबध्नाति ॥ ६० ॥
करोति शीलितः सोऽति विष्टम्भाध्मानहृद्रुजः ।
तृट्कार्श्यपौरुषभ्रंशःस्रोतोरोधमलग्रहान् ॥ ६१ ॥

विषको दूर करने वाला है यह दीपन, पाचन, शोधन करनेवाला तथा शीतल और हलका है ॥ ५७ ॥

तिक्तरस को अधिक सेवन करने से धातुक्षय और वायु जनित रोग समुदाय उत्पन्न होते हैं ॥ ५८ ॥

जो मुख को परिशोषित करता है और हृदय को कर्षित और पीडित करता है वह कषाय रस है । यथा हरीतकी, बहेडा, खैर, मुक्ता, प्रवाल, रसाञ्जन इत्यादि ॥ ५६ ॥

कषायरस ठंढा, भारी, रूखा तथा स्तम्भन करने वाला, शमनकारक, ग्राही, व्रणको पकाने वाला, दुःख तथा क्लेदको दूर करने वाला और कण्ठ को बाधने वाला है ॥ ६० ॥

कषायरस अधिक सेवन से विष्टम्भ, आध्मान,

कषायं प्रायशः शीतंस्तम्भनञ्चाभयामृते ॥ ६२ ॥

रसाः कट्वम्ललवणाः वीर्य्येणोष्णा यथोत्तरम् ।

तिक्तः कषायोमधुरस्तद्वदेव च शीतलः ॥

तिक्तः कटुः कषायश्च रुक्षा बद्धमलास्तथा ।

पट्वम्लमधुराः स्निग्धाः सृष्टविण्मूत्रमारुताः ॥ ६३ ॥

विरेचनद्रव्याणि पृथिव्यम्बुगुणभूयिष्ठानि,

पृथिव्यापो गुर्व्यौ गुरुत्वादधोगच्छन्ति

तस्माद्विरेचनमधोगुणभूयिष्ठमनुमानात् ।

पिपासा, कृशता, ध्वजभङ्ग (नपुंसकता) गलग्रह, स्रोतोरोध प्रभृति को उत्पन्न करता है ॥ ६१ ॥

कषायरस बहुधा शीत वीर्य्य है और मलस्तम्भकारक है परन्तु हरीतकी शीत वीर्य्य तथा मलस्तम्भकारक नहीं है ॥ ६२ ॥

कटु, अम्ल और लवणरस उत्तरोत्तर उष्ण वीर्य्य है और तिक्त, कषाय, और मधुररस उत्तरोत्तर शीत वीर्य्य है। तिक्त, कटु, और कषायरस रुक्ष तथा मलबद्ध-कारक है तद्वत् लवण, अम्ल और मधुररस स्निग्ध और मल मूत्र निःसारक है ॥ ६३ ॥

विरेचनद्रव्य समुदायही पृथिवी और जल बहुल-

वमनद्रव्याण्यग्निवायुगुणभूयिष्ठानि,

अग्निर्वायुर्हि लघू, लघुत्वाच्च तान्यूर्द्ध्वमुत्तिष्ठन्ति ।

तस्माद्वमनमप्यूर्द्ध्वगुणभूयिष्ठमुक्तम् ॥

उभयगुणभूयिष्ठमुभयतो भागम् ।

आकाशगुणभूयिष्ठं संशमनम् ।

संग्राहिकमनिलगुणभूयिष्ठमनिलस्य शोषणात्मकत्वात् ।

दीपनमग्निगुणभूयिष्ठम् ।

है। पृथिवी और जल ये दोनों गुरु द्रव्य हैं। गुरुत्व होने से अधोगमन करता है। विरेचन द्रव्य यथा हरीतकी, त्रिवृत्, जैपाल प्रभृति। अतएव विरेचन द्रव्य समुदायही अधोगुण भूयिष्ठ अर्थात् पृथिवी और जल बहुल है, यह अनुमान प्रमाण से सिद्ध होता है। वमन द्रव्य अग्नि और पवन गुण बहुल है। अग्नि और वायु हलके पदार्थ हैं। लघुत्वहेतु ऊपर में गमन करता है अतएव वामक द्रव्य ऊर्ध्व गुणभूयिष्ठ अर्थात् अग्नि और वायु गुण बहुल है। उभय गुणभूयिष्ठ अर्थात् वैरेचन और वामक द्रव्य उभय गुण बहुल अर्थात् पृथिवी-जल और अग्नि-वायु गुण बहुल है।

संशमन द्रव्य आकाश गुण भूयिष्ठ है।

संग्राही द्रव्य वायुगुणभूयिष्ठ है।

लेखनमनिलानलगुणभूयिष्ठम् ।
बृंहणं पृथिव्यम्बुगुणभूयिष्ठम् ।
एवमौषधकर्म्माण्यनुमानात् साधयेत् ॥ ६४ ॥
भूतेजोवारिजैर्द्रव्यैः शमं याति समीरणः ।
भूम्यम्बुवायुजैः पित्तं क्षिप्रमाप्नोतिनिर्वृतिम् ।
खतेजोऽनिलजैः श्लेष्मा शममेति शरीरिणाम् ।
वियत्पवनजाताभ्यां वृद्धिमाप्नोति मारुतः ॥
आग्नेयमेव यद्द्रव्य तेनपित्तमुदीर्य्यते ।
वसुधाजलजाताभ्यां बलासः परिवर्धते ॥ ६५ ॥

वायुका शोषण गुणसे द्रवांश शोषित होनेपर मलादि को गाढ़ (कठिन) करता है । दीपनद्रव्य अग्निगुण-भूयिष्ठ है । लेखनद्रव्य वायु और अग्नि गुणभूयिष्ठ है । बृंहण द्रव्य पृथिवा और जल गुणभूयिष्ठ है । इसी प्रकार अनुमान से औषधकर्म को सम्पादन करना ॥ ६४ ॥

पृथिवी, तेज, और जलबहुल द्रव्यसे वायु प्रशमित होता है । पृथिवी जल और वायुबहुल द्रव्यसे पित्त शान्त हो जाता है । तथा आकाश, तेज, और वायु बहुल द्रव्यसे कफ शान्त होता है । तद्वत् आकाश और वायु-बहुल द्रव्यसे वायु बढ जाता है । आग्नेय अर्थात् तेज

तत्र य इमे गुणा वीर्यसंज्ञकाः शीतोष्णस्निग्धरूक्षमृदुतीक्ष्णपिच्छिलविशदास्तेषां तीक्ष्णोष्णावाग्नेयौ, शीतपिच्छिलावम्बुगुणभूयिष्ठौ, पृथिव्यम्बुगुणभूयिष्ठः स्नेहः, तोयाकाशगुणभूयिष्ठं मृदुत्वम्, वायुगुणभूयिष्ठं रौक्ष्यम्, क्षितिसमीरगुणभूयिष्ठं वैशद्यम्, गुरुलघू विपाकावुक्तगुणौ। तत्रोष्णस्निग्धा वातघ्नाः, शीतमृदुपिच्छिलाः पित्तघ्नाः, तीक्ष्णरूक्षविशदाः श्लेष्मघ्नाः, गुरुपाको वातपित्तघ्नः, लघुपाकः श्लेष्मघ्नश्चेति ॥ ६६ ॥

बहुल द्रव्यसे पित्त कुपित होता है। तथा पृथिवी और जल बहुल द्रव्यसे कफ वृद्धिको प्राप्त करता है ॥ ६५ ॥

शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, मृदु, तीक्ष्ण, पिच्छिल, और विशद ये जो आठ गुण हैं वे वीर्यसंज्ञाको प्राप्त करते हैं। उसी के बीच में तीक्ष्ण और उष्ण अग्निगुण बहुल है। शीत और पिच्छिल जलगुणभूयिष्ठ है। चिकना द्रव्य पृथिवी और जल गुणबहुल है। वायुगुणबहुल द्रव्य रूखा होता है। पृथिवी और वायुबहुल द्रव्य बिशद होता है। उष्ण और चिकना द्रव्य बातको नाश करनेवाला है। मृदु, शीत और पिच्छिल गुणयुक्त द्रव्यसे पित्तको शान्त करता है तथा तीक्ष्ण, रूक्ष, विशद गुणयुक्तद्रव्यों से कफनाश होता है ॥ ६६ ॥

बङ्गदेशान्तर्गत-बरिशाल-मण्डलस्थित-खलिसाकोटा-ग्रामनिवासि-वैद्याचार्य्य-कविराजश्रीप्रसन्नकुमार-कविरत्नात्मज-वाराणसीहिन्दविश्वविद्यालयायुर्वेदाध्यापक-कविराज-श्रीनिशिकान्त-वैद्यशास्त्रि-सङ्कलितशरीर-विज्ञाने भूतादि-विज्ञानं नाम प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥ (क)

बङ्ग देशान्तर्गत बरिशाल मण्डलस्थित खलिसाकोटा ग्रामनिवासि वैद्याचार्य्य कविराज श्रीप्रसन्नकुमार कविरत्नात्मज वाराणसी हिन्दू विश्वविद्यालयायुर्वेदाध्यापक कविराज श्रीनिशिकान्त वैद्यशास्त्रि विरचित शरीर-विज्ञान का भूतादिविज्ञान नाम प्रथम अध्याय समाप्त है ॥ (क)

श्रीशिवाय नमः ।

अथ दोषदूष्यादिविज्ञानीय-मध्यायंव्याख्यास्यामः ।

द्वितीयोऽध्यायः ।

शरीरं सप्तधातुकमिति कस्मात् ? पुंसः शुक्लकृष्ण-धूम्रपीतकपिलपाण्डुराणि द्रव्याणि सप्तप्रकाराणि विषय-भोग्यानि जायन्ते । तेषामन्योऽन्यं सौम्यगुणत्वात्तदनुकूल-गुणत्वाच्च, यथौदनादीनां व्यञ्जनादयोऽनुकूलाः, तेषां परिणामे षड्विधोरसः वर्णतः शुक्लादिरूपः स्वादने मधुरा-दिरसो भवति ॥ १ ॥

शरीरका उपादान कारण रसादि दूष्यपदार्थवर्णना-न्तर वातादि दोषों का वर्णन करेंगे ।

पुरुष शुक्ल, कृष्ण, पीत, कपिल तथा पाण्डुवर्णविशिष्ट द्रव्यसमूहों को भोजन करता है । अन्नका जैसा व्यञ्जनादि अनुकूल होता है वैसा ये सप्तवर्णयुक्त पदार्थोंके पर-स्पर सौम्यगुण और अनुकूलगुणों के कारण से परिणाममें मधुरादि छः रस तथा वर्णमें शुक्लादिरूप होता है ॥ १ ॥

तत्र पाञ्चभौतिकस्य चतुर्विधस्य षड्रसस्य द्विविधवीर्य्यस्याष्टविधवीर्य्यस्य वाऽनेकगुणस्योपयुक्तस्याहारस्य सम्यक् परिणतस्य यस्तेजोभूतः सारः परमसूक्ष्मः स रस उच्यते ॥२॥

तत्र (रसगतौ) धातुरहरहर्गच्छतीति रसः। तस्य हृदयं स्थानं, स हृदयाच्चतुर्विंशतिं धमनीमनुप्रविश्योर्ध्वगा दश, दशचाधोगामिन्यश्चतस्रस्तिर्य्यग्गाः कृत्स्नं शरीरमहरहस्तर्पयति वर्धयति धारयति यापयति जीवयति चादृष्टहेतुकेन कर्म्मणा ॥ ३ ॥

द्रव्य पृथिव्यादि भूतद्रव्यों के भेद से पाञ्चभौतिक है। चर्व्य, चोष्य, लेह्य और पेय भेद से आहार चतुर्विध है, मधुरादिभेद से षड्विध है, शीतोष्णभेद से द्विविध है, अथवा शीत, उष्ण, स्निग्ध, रुक्ष, विशद, पिच्छिल, मृदु, और तीक्ष्ण भेद से अष्टविधवीर्य्य है, तथा शीतादि और द्रवादि के गुण भेद से विंशतिप्रकार के गुण विशिष्ट-भोजनद्रव्य भुक्त और सम्यक् प्रकार से परिणत अर्थात् जीर्णहोने से आहार का जो तेजोभूत अर्थात् जठराग्नि-सम्भूत और स्रोतसों में जानेवाले पुरीषादिमलरहित परम-सूक्ष्म सारपदार्थ प्रथम उत्पन्न होता है उसको रस कहते हैं।२।

रस धातु गति में अर्थ को लेता है, सर्वदा शरीर

स खल्वाप्योरसः यकृत्प्लीहानौ प्राप्य रागमुपैति ॥ ४ ॥
रञ्जितास्तेजसात्वापः शरीरस्थेन देहिनाम् ।
अव्यापन्नाः प्रसन्नेन रक्तमित्यभिधीयते ॥ ५ ॥
रसादेव स्त्रिया रक्तं रजःसंज्ञं प्रवर्त्तते ।
तद्वर्षाद्द्वादशादूर्ध्वं याति पञ्चाशतः क्षयम् ॥ ६ ॥

में गमन कर रहा है इस लिए ये रस नाम से कथित होता है। रस सर्वशरीरानुसारी होने पर भी इस का प्रधान स्थान हृदय है। हृदय शब्द से हृदयोपलक्षित स्थान जानना चाहिये क्योंकि शास्त्रमें उक्त है कि हृदय ही ओजपदार्थ का स्थान है। वह रस हृदयसे उर्ध्वगदश, अधोग दश, तथा तिर्य्यक्‌गामिनी चार ये चतुर्विंशति धमनीओ में गमन करके शरीर को स्वभाव से सर्वदा तर्पण अर्थात्प्रसन्न करता, वर्धनकरता, धारणकरता, यापन करता, और देह को जीवित रखता है ॥ ३ ॥

रस आप्य पदार्थ होने से भी यह यकृत् और प्लीहा में गमन करके लोहितत्वको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

शरीरियों के शरीरस्थ प्रसन्न अर्थात् अदुष्ट तेज (रञ्जक पित्त) से अव्यापन्न आप्यरस लोहिताकार रक्त-नाम से कथित होता है ॥ ५ ॥

आर्तव-शोणितं तु आग्नेयमग्निसोमीयत्वाद्गर्भस्य ।
पाञ्चभौतिकं त्वपरे जीवरक्तमाहुराचार्य्याः ॥ ७ ॥

विस्रता द्रवता रागः स्यन्दनं लघुता तथा ।
भूम्यादीनां गुणा ह्येते दृश्यन्ते चात्र शोणिते ॥ ८ ॥
रसाद्रक्तं ततोमांसं मांसान्मेदः प्रजायते ।
मेदसोऽस्थि ततो मज्जा तस्याः शुक्रन्तु जायते ॥ ९ ॥

रस से ही स्त्रीयों के रज संज्ञक रक्त निकलता है । वह रजसञ्ज्ञक रक्त द्वादश वर्ष के बाद प्रारम्भ होता है और पचास वर्षके बाद क्षय को प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

सौम्य रससे उत्पन्न होकरभी आर्तव-शोणित आग्नेय है । क्योंकि गर्भ अग्निसोमीय है अर्थात् आर्तव आग्नेय तथा शुक्र सौम्य है । वह गर्भ शुक्र-शोणित से उत्पन्न होता है । जीव-शरीर में रक्त का दर्शन होता है, मृत-शरीर में नही होता है, इसलिए कोई कोई वैद्याचार्य्यों ने रक्त को पाञ्चभौतिक जीवरक्त कहते हैं ॥ ७ ॥

विस्रता (आमगन्धित्ता) यह पृथिवी का गुण है, द्रवता जलका गुण, राग (लोहितत्व) तेज का गुण, स्यन्दन वायु का गुण, तथा लघुता आकाश का गुण है । पृथिव्यादिकों के ये सब गुण जब दृष्टिगोचर होते हैं तब रक्त अवश्यही पञ्चभौतिक है ॥ ८ ॥

अथ रसक्रमोत्पत्तिः ।

तेषां रसादीनां मलस्थूलाणुभागविशेषेण त्रिविधः परिणामोभवति; तद्यथा—अन्नात्पच्यमानात् विण्मूत्रं मलः, अन्नस्य सारो रसः; रसादग्निपक्वात् मलभागः कफः, स्थूलभागो रसः, अणुभागोरक्तं, रक्तादग्निपक्वात् मलः पित्तं, स्थूलभागः शोणितं, अणुभागस्तुमांसमिति । ततोऽपि आत्मपावकपच्यमानान्मलः, श्रोत्रनासाक्षिप्रजननादिस्रोतोमल', स्थूलभागो मांसं, सूक्ष्मभागो मेदस्ततोऽपि निजवह्निपच्यमानान्मलः स्वेदः, स्थूलांशो मेद एव, सूक्ष्मभागोऽस्थि; ततोऽपि पच्यमानान्मलः केशलोमश्मश्रूणि, स्थूलभागोऽस्थि, सूक्ष्मस्तुमज्जा, ततोऽपि पावकपच्यमान्मलः नयनपुरीषत्वचास्नेहः, स्थूलांशोमज्जा, सूक्ष्मांशः शुक्रं, ततः पुनः पच्यमानादच मलो नोत्पद्यते सहस्रधाध्मातसुवर्णवत्, स्थूलभागः शुक्रमेव, स्नेहभागः सूक्ष्मस्तेजोभूतमोजः ॥ १० ॥

रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मदा, मेदा से मज्जा, मज्जा से शुक्र की उत्पत्ति होती है ॥ ६ ॥

पच्यमान अन्नका सारभाग रस और क्रिट्टभाग मलरूपसे परिणत होता है । वह प्रथमोत्पन्नरस आम (अपक्वरस) कथित होता है। वह आमरस शरीरस्थ धातुरूप रस में गमन कर उसी की ऊष्मा से परिपाक को प्राप्त

स्थूल-सूक्ष्म-मलैः सर्वे भिद्यन्ते धातवस्त्रिधा ।
स्वः स्थूलोंऽशः परं सूक्ष्मस्तन्मलं याति तन्मलः ॥

होकर तीन भाग से विभक्त होता है। यथा—मलभाग-कफरूपमें, स्थूलभाग पक्करसरूपमें, सूक्ष्मभागरक्तरूप में परिणत होता है। वह रक्त फिर रक्तधातु में गमन कर के उसी की उष्मासे परिपाक को प्राप्त होकर तीन भाग-से विभक्त होता है। यथा मलभाग पित्तरूपमें, स्थूलभाग रक्त धातुरूपमें, और सूक्ष्मभाग मांसरूपमें परिणत होता है। वह मांस फिर मांस धातु में गमन करके उसी की उष्मासे परिपक्क होकर तीनभाग से त्रिभक्त होता है यथा मलभाग कर्ण, नासिका और लिङ्गादिकों के मलरूप में, स्थूलभाग मांस धातुरूपमें, और सूक्ष्मभाग मेदरूपमें परि-णत होता है। वह मेद फिर मेद धातुमें गमन करके उसी की उष्मासे परिपाक को प्राप्तहोकर तीनभागसे त्रिभक्त होता है। यथा मलभाग स्वेदरूपमें, स्थूलभाग मेदधातु रूप में और सूक्ष्म भाग अस्थिरूपमें परिणत होता है। अस्थि फिर अस्थिधातु में गमन करके उसी की उष्मासे परि-पक्क होकर तीन भाग से विभक्त होता है, यथा-मलभाग लोम, और श्मश्रुरूप में तथा सूक्ष्मभाग मज्जा धातुरूप में परिणत होता है। वह मज्जा फिर मज्जा धातु में गमन

स्वाग्निभिः पच्यमानेषु मलः षट्सु रसादिषु ।
न शुक्रे पच्यमानेऽपि हेमनीवाक्षये मलः ॥ ११ ॥

करके उसी की उष्मासे परिपाकको प्राप्त होकर तीन भाग से विभक्त होता है यथा--मलभाग नेत्र, पुरीष और त्वचा के स्नेहरूपमे, स्थूलभाग, मज्जाधातुरूपमें और सूक्ष्मभाग शुक्ररूप में परिणत होता है। वह शुक्र फिर शुक्रधातु में गमन करके उसी की उष्मासे परिपक्क होकर स्थूल और सूक्ष्म यही दो भागों से विभक्त होता है। सहस्रधाध्मात सुवर्ण से जैसा मल उत्पन्न नहीं होता है वैसा ही शुक्र का भी मल नहीं होता, यह शास्त्र का सिद्धान्त है। इस का स्थूल भाग शुक्रधातु में और सूक्ष्मभाग ओज रूप में परिणत होता है। रस से शुक्र तक ये सप्तधातुये हैं। कोई कोई ओजपदार्थ को धातु कह कर अष्टम धातु स्वीकार करते हैं, कोई कोई इसको उपधातु कहते हैं ॥ १० ॥

रस से लेकर मज्जा धातु तक ये छः धातुये अपना अपनी अग्नि से पच्यमान होकर मलको निःसारित करते हैं किन्तु रस मुहुर्मुहुः परिपक्क होकर शुक्र धातु में परिणत होने के बाद इस से मल निर्गत नहीं होता ॥ ११ ॥

स खलु रसः त्रीणि त्रीणि कलासहस्राणि पञ्चदश च कला एकैकस्मिन् धातावुतिष्ठते । एवं मासेन रसः शुक्री भवति स्त्रीणाञ्चार्त्तवमिति ॥ १२ ॥

अष्टादश सहस्राणि संख्या ह्यस्मिन् समुच्चये ।
कलानां नवतिः प्रोक्ताः स्वतन्त्र-परतन्त्रयोः ॥ १३ ॥

रसस्तुष्टिं प्रीणनं रक्तपुष्टिञ्च करोति । रक्तं वर्णप्रसादं मांसपुष्टिं करोति, जीवयति च । मांसं शरीरपुष्टिं मेदसश्च, मेदः स्नेहस्वेदौ दृढत्वं पुष्टिमस्थाञ्च । अस्थि देहधा-

---

वह रस एक एक धातु में तीन हजार पन्द्रह कला अर्थात् एक सौ बीस घंटा करके अवस्थिति करता है । आहारद्रव्यों से एक रोजके बीच में ही रस उत्पन्न होता है । उस से अन्य जो छः धातुये हैं वे प्रत्येक ही पांच पांच दिन में उत्पन्न होते हैं । इस प्रकार से एक मास में रस पुरुषों के शुक्ररूप में और स्त्रीओं के आर्त्तवरूप में परिणत होता ॥ १२ ॥

स्वतन्त्र और परतन्त्र में अर्थात् यह सुश्रुततन्त्र तथा चरकादि अन्यतन्त्र में अष्टादशसहस्रनव्वे कला में एक मास कथित होता है । ६०३ कलामें एक दिन रात सुतरां ३०१५ कलामें ५ दिनरात होता है ॥ १३ ॥

रणं मज्जायाः पुष्टिश्च । मज्जा प्रीतिं स्नेहं बलं शुक्रपुष्टिं पूरणमस्थ्नाञ्च । शुक्रं धैर्य्यं च्यवनं प्रीतिं देहबलं हर्षं बीजार्थञ्च ॥ १४ ॥

अथ धातुव्यतिरिक्तान् गुणानाह ।

अतिरिक्तागुणारक्ते वह्नेर्मांसे तु पार्थिवाः ॥
मेदस्यपां भुवश्चार्स्थ्न पृथिव्यानिलतेजसाम् ॥
मज्ज्ञि शुक्रे च सोमस्य मूत्रे च शिखिनो गुणाः ।
भुवस्तथार्त्तवे त्वग्ने रसे चीरे तथाम्भसः ॥ १५ ॥

रस शरीर का तुष्टि सम्पादन, तृप्तिप्रदान और रक्त की पुष्टि क्रिया सम्पादन करता है। रक्तधातु वर्ण की प्रसन्नता और मांस की पुष्टि सम्पादन करता है तथा जीव को जीवित रखता है। मांसधातु शरीर और मेदकी पुष्टि को देनेवाला है। मेद शरीर का स्नेह, पसेना, और दृढ़ता तथा अस्थियों की पुष्टि करनेवाला है। अस्थि देहधारण करता तथा मज्जाकी पुष्टि सम्पादन करता है। मज्जा प्रीति, स्निग्धता, बल, शुक्रकी पुष्टि तथा अस्थिओं को पूरण करता है। शुक्र धैर्य्य, वीरता, च्यवन, (स्खलन), स्त्रीयों में प्रीति, देहका बल, स्त्रीयों में हर्ष तथा बीजार्थ, (सन्तानोत्पत्ति) सम्पादन करता है ॥ १४ ॥

अथ धातुक्षयलक्षणमाह ।

रसक्षये हृत्पीडा-कम्प-शोष-शून्यता तृष्णा च । शोणित क्षये, त्वक्पारुष्यमम्लशीतप्रार्थना शिराशैथिल्यञ्च । मांस-क्षये स्फिग्गण्डौष्ठोपस्थोरुवक्षःकक्षापिण्डिकोदरग्रीवाशुष्कता रौक्ष्यतोदौ गात्रसदनं धमनीशैथिल्यञ्च । मेदसः क्षये प्लीहाभिवृद्धिः सन्धिशून्यता रौक्ष्यं मेदुरमांसप्रार्थना च । मज्जक्षये अल्पशुक्रता पर्वभेदोऽस्थिनिस्तोदोऽस्थिशून्यता च । शुक्रक्षये मेढ्रवृषणवेदना अशक्तिर्मैथुने चिराद्वा प्रसेकः, प्रसेके चाल्परक्तशुक्रदर्शनम् ॥ १६ ॥

रक्त में अग्निका गुण अधिक, मास मे पार्थिव गुण-अधिक, मेद में जल गुण और पृथिवी गुण अधिक, तथा अस्थि में पृथिवी, वायु और अग्निगुण अधिक दृष्ट होता है। मज्जा और शुक्रमें सोमगुण अधिक, आर्त्तव में पार्थिव गुण अधिक, रस में अग्निगुण अधिक तथा दुग्धमें जल-गुण अधिक प्रत्यक्ष होता है ॥ १५ ॥

रस के क्षय होने पर हृदयकी शून्यता और तृष्णा उपस्थित होती है । रक्त क्षय से त्वचाकी कर्कशता, अम्ल रस के सेवन में इच्छा, शीतल द्रव्यमे आकांक्षा और शिरा शिथिल (ढिला) हो जाता है । मांसक्षय से स्फिक् गण्ड, ओष्ठ, उपस्थ, (लिङ्ग) उरु, वक्ष, बगल, पिण्डिका,

अथ रसवृद्धिमाह ।

रसोऽतिवृद्धो हृदयोत्क्लेदनं प्रसेकञ्चापादयन्ति । रक्तं रक्ताङ्गितां शिरापूर्णत्वञ्च । मांसं स्फिग्गण्डोष्ठोपस्थोरुबाहुजङ्घासु वृद्धिं गुरुगात्रताञ्च । मेदः स्निग्धाङ्गतामुदरपार्श्ववृद्धिं कासश्वासादीन् दौर्गन्ध्यञ्च । अस्थि अध्यस्थीनि अधिदन्तांश्च । मज्जा सर्वाङ्ग-नेत्र-गौरवम् । शुक्रं शुक्राश्मरीमतिप्रादुर्भावञ्च ॥ १७ ॥

उदर और ग्रीवा में रूक्षता, सूचीविध्यवद्वेदना, गात्रावसाद तथा धमनीओं की शिथिलता होती है । मेदःक्षय से प्लीहा की अतिवृद्धि, सन्धिशून्यता, त्वचा की कर्कशता और मेदुरमांसभक्षणमें इच्छा होती है । अस्थिक्षय से अस्थिओं में शुचीविध्यवद्वेदना, दन्त और नखभंगता, तथा रूक्षता ये सब लक्षण प्रगट होता है । शुक्रक्षय से लिङ्ग और वृषणमे वेदना, मैथुनमे असमर्थता, विलम्बमें शुक्रक्षरण तथा शुक्रक्षरण के साथ थोड़ा २ रक्त और शुक्र का दर्शन होता है ॥ १६ ॥

रस स्वप्रमाण से अधिक होने पर हृल्लास (वमनभाव) और मुख मचलाता है । रक्त की अधिकतासे शरीर तथा नेत्र की रक्त वर्णता और सिराका पूर्णत्व होता है । मांसकी अतिवृद्धि से स्फिक, कमर, गण्ड, ओष्ठ, उपस्थ, उरु

यदि मासेन रसः शुक्री भवति बालानामश्वतामपि तत्कथं न दृश्यते इति शंङ्कानिरासार्थमुच्यते, यथाहि पुष्पमुकुलस्थो गन्धो न शक्यमिहास्तीति वक्तुं नैव नास्तीत्यथ वास्ति, सतां भावानामभिव्यक्तिरिति कृत्वा केवलं सूक्ष्मान्नाभिव्यक्तिं गच्छति, एवं बालानामपि वयः-परिणामात् शुक्रस्य प्रादुर्भावो भवति । रोमराज्यादयस्तथार्त्तवादयश्च विशेषा नारीणां रजसि उपचीयमाने शनैः शनैः स्तनगर्भाशयाभिवृद्धिर्भवति ॥ १८ ॥

बाहु और जङ्घामें वृद्धि तथा शरीर की गुरुता होता है। मेद की अतिवृद्धि से अङ्गकी स्निग्धता (चिक्कनता) उदर-पार्श्वदेश की वृद्धि, कासश्वासादि तथा शरीर दुर्गंध होता है। मज्जा की अधिकता से सर्वाङ्ग तथा नयन की गुरुता होती है। शुक्रधातु अतिवृद्धि को प्राप्त होने से शुक्राश्मरी और शुक्रका अतिप्रादुर्भाव होता है ॥ १७ ॥

अगर एकमास में रस शुक्ररूप में परिणत होता है तो बालकों के क्यों शुक्रनहीं प्रत्यक्ष होता ? यह प्रश्नकी मीमांसा यह है कि, जैसा कुसुममुकुलमें गन्ध है कि नहीं इस की उपलब्धि नहीं होती है। ऐसे ही बालकों के शुक्र है कि नहीं है यह भी नहीं समझ में आता। जो है उसी का ही अभिव्यक्ति होती है और जो नहीं है उस

अथ धातुमलाः ।

जिह्वानेत्रकपोलानां जलं पित्तञ्च रञ्जकम् ।
कर्णविड्रसनादन्तकक्षा-मेढ्रादिजं मलम् ॥
नखो नेत्रमलं वक्त्रस्निग्धत्वं पिडिकास्तथा ।
जायन्ते सप्तधातूनां मलान्येतान्यनुक्रमात् ॥ १६ ॥

का विकाश नहीं दृष्ट होता यह सत्कार्य्यवाद से समझना चाहिये कि पुष्पमुकुल में भी गन्ध है, केवल अतिसूक्ष्मता के कारण से यह प्रगट नहीं होता, कालान्तर में मुकुल का पत्र और केशर विवृत अर्थात् मुकुल प्रस्फुटित हो जाने पर वह गन्ध स्थूलत्व को प्राप्त करके प्रगट होता है। इसी प्रकार से बालकों के भी वयपरिणाममें शुक्र का प्रादुर्भाव, रोमराज्यादिकों के उद्भव तथा स्त्रीओं के भी परिणत उमर में आर्तवादि तथा रोमराज्यादिकों का उद्भव और रज उपचीयमान होने से धीरे २ स्तन, गर्भाशय, और योनि की अतिवृद्धि होती है ॥ १८ ॥

जिह्वा नेत्र, और कपोलके जल, रञ्जकपित्त, कर्णमूल, जिह्वा, दन्त, बगल तथा लिङ्गादिकों के मल, नख, नेत्रमल, और मुखकी स्निग्धता तथा पिटिका ये सप्तविध धातुमल यथा क्रम से सप्तधातुओं से उत्पन्न होते हैं ॥ १६ ॥

अथोपधातवः ।

स्तन्यं रजश्चनारीणां काले भवति गच्छति ।
शुद्धमांसभवः स्नेहः सा वसा परिकीर्त्तिता ॥
स्वेदोदन्तास्तथाकेशास्तथैवौजश्च सप्तमम् ।
इति धातुभवा ज्ञेया एते सप्तोपधातवः ॥ २० ॥
ओजश्च तेजो धातूनां शुक्रान्तानां परं स्मृतम्
हृदयस्थमपि व्यापि देहस्थितिनिबन्धनम् ॥
यस्य प्रवृद्धौ देहस्य तुष्टिपुष्टिबलोदयाः ।
यन्नाशे नियतोनाशो यस्मिन् तिष्ठति जीवनम् ॥ २१ ॥

स्त्रीओं के स्तन्य और रज ये दोनों उपधातु हैं । यथा काल में आविर्भूत और तिरोभूत होता है । शुद्ध मांस से उत्पन्न हुआ जो स्नेह है उसी को वसा कहते हैं । यह स्तन्य, रज तथा वसा और स्वेद दन्त, केश, तथा रज ये सांत उपधातु हैं ॥ २० ॥

रसादि शुक्रान्त धातुसमूह के प्रधानभूत जो तेज-पदार्थ है उसी का नाम ओज है। ओज सर्वदेह व्यापक है । लेकिन हृदय ही इस का प्रधान स्थान जानना । ओज देहस्थिति का कारण है ओज वृद्धि से शरीर की तुष्टि पुष्टि तथा बललाभ होता है । ओज नाशसे देहका

चरके तु—अष्टविन्दुप्रमाणं तदीषद्रक्तं सपीतकम् ।
अग्निषोमात्मकत्वेन द्विरूपं वर्णितं तु तत् ॥ २२ ॥
ओजः सोमात्मकं स्निग्धं शुक्लं शीतं स्थिरं सरम् ।
विविक्तं मृदुमृत्स्नञ्च प्राणायतनमुत्तमम् ॥
देहावयवत्वेन व्याप्तो भवति देहिनाम् ।
तदभावाच्च शीर्य्यन्ते शरीराणि शरीरिणाम् ॥ २३ ॥

अथौजःक्षयकारणमाह ।

अभिघातात् क्षयात्कोपाच्छोकाद्ध्यानाच्छ्रमात्क्षुधः ।

विनाश होता है और इसकी स्थिति से देह (जीवन) की स्थिति होती है ॥ २१ ॥

चरक में उक्त है कि ओज अष्ट विन्दु परिमित है यह थोड़ारक्त और थोड़ा पिला रंग के है । ओज अग्निसोमात्मक है इसी लिये आग्नेय और सौम्य य दोरूप से वर्णित हुआ है ॥ २२ ॥

ओज सोमात्मक, स्निग्ध, श्वेतवर्ण, शीतल, स्थिर, शरीरका स्थैर्य्यकारी, सर अर्थात् प्रसरणशील, विविक्त अर्थात् स्नेहगुण सम्पन्न तथा मृदु, मृत्स्न (पिच्छिल) और प्राण का श्रेष्ठ आयतन है । प्राणीओं के सर्वावयवविशिष्ट-देह ओजसे व्याप्त है, इसी का अभाव से शरीरीओं के शरीर शीर्ण अर्थात् विनाश होता है ॥ २३ ॥

ओजः संक्षीयते ह्येभ्यो धातुग्रहणनिःसृतम् ।
तेजः समीरितं तस्माद्विस्रंसयति देहिनाम् ॥ २४ ॥

तस्य विस्रंसो व्यापत् क्षय इति लिङ्गानि व्यापन्नस्य भवन्ति ॥ २५ ॥

सन्धिविश्लेषो गात्राणां सदनं दोषच्यवनं क्रियासन्निरोधश्च विस्रंसे । स्तब्धगुरुगात्रता वातशोफो वर्णभेदो-ग्लानिस्तन्द्रा निद्रा च व्यापन्ने । मूर्च्छा मांसक्षयो मोहः प्रलापो मरणमिति क्षये ॥ २६ ॥

अभिघात, क्षय, क्रोध, शोक, चिन्ता, श्रम, और क्षुधा, ये सब कारणों से ओज पदार्थ क्षय को प्राप्त होता है। ये अभिघातादि कारणों से ओजधातु वहि: स्रोतस से निकलकर और वायु से प्रेरित होकर हृदयसे निकल कर आता है ॥ २४ ॥

व्यापन्न अर्थात् दोषों से दूषित ओज पदार्थका विस्रंस (स्थानच्युति) व्यापत् अर्थात् दुष्ट वातादि दोष रसादि दूष्य पदार्थों के संसर्ग से अन्यथापत्ति, तथा क्षय ये तीन लक्षणों को प्रगट कर देता है ॥ २५ ॥

ओज क्षय के लक्षण ।

व्यापन्न अर्थात् दोषों से दूषित ओज पदार्थका विस्रं-स (स्थानच्युति), व्यापद् (दुष्टवातादि दोष रसादि दूष्य

तत्र विस्रंसे व्यापन्ने च क्रियाविशेषैरविरुद्धैर्बलमा-
स्थापयेत्; नष्टसञ्ज्ञन्त्वर्जयेत् ॥ २७ ॥

पदार्थों के संसर्ग से अन्यथापत्ति) आैर क्षय ये तीन लक्षणों से प्रगट कर देता है ॥

विस्रंसलक्षण ।

सन्धिविश्लेष, गात्रावसाद, दोषच्यवन अर्थात् वातादि दोषों के स्थानभ्रंस तथा वाक्य, मन और शरीर में क्रिया का अवरोध ये सब विस्रंस का लक्षण है ।

व्यापद लक्षण ।

ओज व्यापन्न होने से गात्रकी स्तब्धता तथा गुरुता, वात जनित शोथ, गौरादिवर्णों का भेद अर्थात् अन्यथा, ग्लानि, तन्द्रा, और निद्रा ये सब लक्षण उत्पन्न होते हैं ।

क्षयलक्षण ।

ओजक्षय होनेपर मूर्च्छा अर्थात् वेहोस हो जाना, मांस क्षय, मोह, (चित्तका विभ्रम) प्रलाप, (असम्बन्ध-वाक्य कथन) तथा मृत्युभी होती है ॥ २६ ॥

ओज धातु का विस्रंस और व्यापद् संघटित होने पर क्षय की अविरोधी क्रिया से अर्थात् रसायन, बाजी-करण चिकित्साओं से ओज धातु के आप्यायन अर्थात् वर्धन करना । ओज क्षय से मूढ़सञ्ज्ञ अर्थात् संज्ञाहीन होनेपर रोगी की चिकित्सा न करे ॥ २७ ॥

तेजोऽप्याग्नेयं क्रमशः पच्यमानानां धातूनामभिनिर्वृत्तमन्तःस्थं स्नेहजातं वसाख्यं स्त्रीणां विशेषतो भवति, तेन मार्दवसौकुमार्य्यमृद्वल्परोमतोत्साहदृष्टिस्थितिपक्तिकान्तिदीप्तयो भवन्ति। तत् कषायतिक्तशीतरूक्षविष्टम्भिवेगविघातव्यवायव्यायामव्याधिकर्षणैश्च विक्रियते। तस्यापि पारुष्यवर्णभेदतोदनिष्प्रभत्वानि विस्रंसने भवन्ति, कार्श्यं मन्दाग्नितायस्तिर्य्यक् च विच्युतिर्व्यापत्तौ, दृष्ट्यग्निबलहा-

---

तेज भी अर्थात् धातुस्नेह भी अग्नेयपदार्थ है, क्रमशः पच्यमान धातु समूह के अन्तरस्थजो तेज अर्थात् स्नेह जात, उसी को वसा जानना। वह वसा औरतों के अधिक उत्पन्न होती है। वसा से शरीर की मृदुता तथा सौकुमार्य्य, रोम का मृदुत्व और अल्पत्व, उत्साह, दृष्टि और पाकशक्ति तथा कान्ति और दीप्ति होती है। कषाय, तिक्त शीत रूक्ष, विष्टम्भी, वेगधारण, मैथुन, व्यायाम, और व्याधि से क्षीणता ये सब कारणों से वसा विकृति को प्राप्त करती है। वसा का भी विस्रंसलक्षण से देहकी कर्कशता, वर्णभेद, तोद, और प्रभाकी हानि होती है। वसा का व्यापद लक्षण से कृशता, मन्दाग्निता तथा दोषादिकों के अधस्तिर्य्यक्च्युति होती है। वसाक्षय से

न्यनिलप्रकोपमरणानि क्षये; तत्रापि स्नेहपानाभ्यङ्गप्रदेह-परिषेकस्निग्धलघ्वन्नानि क्षये विदधीत ॥ २८ ॥

दोषधातुमलक्षीणो बलक्षीणोऽपि वा नरः ।
स्वयोनिवर्द्धनं यत्तदन्नपानं प्रकांक्षति ॥
यद्यदाहारजातं तु क्षीणः प्रार्थयते नरः ।
तस्य तस्य स लाभे तु तं तं क्षयमपोहति ॥
यस्य धातुक्षयाद्वायुः संज्ञां कर्म्म च नाशयेत् ।
प्रक्षीणं च बलं यस्य नासौ शक्यश्चिकित्सितुम् ॥२६॥

दृष्टि, अग्नि तथा बलका ह्रास, वात का प्रकोप, और मृत्यु भी होती है। इस में स्नेह पान, अभ्यङ्ग, प्रदेह, परिषेक, तथा स्निग्ध और लघु अन्न देना चाहिये ॥ २८ ॥

जिस मनुष्य के दोष, धातु तथा मल का अथवा ओज पदार्थ का क्षय होता है वह स्वयोनिवर्धक अन्नपान की इच्छा करता है। क्षीणनर जिस जिस आहार जात-द्रव्य की आकांक्षाकरते हैं वह उस आहार को प्राप्त होने पर क्षय से दूर होते हैं।

धातुक्षयके कारण से वायु प्रकुपित होकर जिसकी संज्ञा और कर्म्म को नाश कर देता है तथा जिसका ओज पदार्थ क्षीण होता है चिकित्सा से वह बल को लाभ नहीं कर सकता ॥ २६ ॥

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥
स्वस्थस्य रक्षणं कुर्यादस्वस्थस्य तु बुद्धिमान्।
क्षपयेद् बृंहयेच्चापि दोषधातुमलान् भिषक्।
तावद्यावदरोगः स्यान्नरो रोगसमन्वितः॥ ३०॥
शरीरं हि विमलमुक्तमाचार्य्यैर्मलनीकरणादिति।
शरीरदूषणाद्दोषा इति संज्ञां च लभन्ते वातपित्तकफाः॥

जिस व्यक्ति का वातादि दोष, अग्नि, रसादि धातु, तथा मलक्रिया समभावापन्न है तथा आत्मा इन्द्रिय और मन प्रसन्न हैं उसी को स्वस्थ जानना। बुद्धिमान् वैद्य स्वस्थ की रक्षा करे और अस्वस्थ की चिकित्सा करे अर्थात् रोग दूर करे। रोगग्रस्त व्यक्ति जब तक आरोग्यता को प्राप्त नहीं होता तब तक विवेचना करके उस का दोष धातु तथा मलका ह्रास और वृद्धि करे॥ ३०॥

शरीर को मलिन करता है इस लिए वैद्याचार्य्य-वातादि दोषों को मल कहते हैं। शरीर को दुष्ट करता है इसी से वातादि मल दोष नाम से कथित होता है। वात पित्त कफ को शारीरदोष कहते हैं। ये दोष जब विकृति को प्राप्त करते हैं तब देह को नाश करते हैं।

वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयोदोषाः समासतः ।
विकृताऽविकृता देहं घ्नन्ति ते वर्द्धयन्ति च ॥
ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्योरधोमध्योर्द्ध्वसंश्रयाः ।
वयोऽहोरात्रिभुक्तानां तेऽन्तमध्यादिगाः क्रमात् ॥ ३१ ॥

वातपित्तश्लेष्माण एव देहसम्भवहेतवः। तैरेव अव्यापन्नैरधोमध्योर्द्ध्वसन्निविष्टैः शरीरमिदं धार्य्यते आगारमिव स्थूणाभिस्तिसृभिरतश्च त्रिस्थूणमाहुरेके । त एव च

और जब स्वाभाविक हालत में रहते है तब देह की वृद्धि होती है॥ वातादि दोषत्रय देह व्यापी होकर भी यथा क्रमसे हृदय और नाभी के अधः, मध्य, तथा ऊर्द्ध्व देश में विशेषभाव से अवस्थान करते है । वयस, दिवा, रात्री, तथा भोजन के अन्त, मध्य और आदि में यथा क्रम से बात पित्त तथा कफ प्रकुपित्त होते हैं अर्थात् वयस, दिवा, रात्री और आहार के प्रथम में कफका, मध्य में पित्त का तथा अन्त में वायुका प्रकोप होता है ॥ ३१ ॥

बात, पित्त तथा कफ ही शरीरोत्पत्तिके कारण हैं। ये दोषत्रय प्रकृतिस्थ होकर यथा क्रमसे अधः मध्य तथा उर्द्ध्वसन्निविष्ट रहकर देहका धारण करते है । जैसा स्थूणा अर्थात् गृहस्तम्भ से गृह धृत होता है तद्वत् बात,

व्यापन्नाः प्रलयहेतवः, तदेभिरेव शोणित चतुर्थैः सम्भव-स्थितिप्रलयेष्वप्यविरहितं शरीरम्भवति ॥ ३२ ॥

अथ दोषलक्षणम् ।

प्रकृत्यारम्भकत्वे सति दुष्टिकर्तृत्वं दोषत्वमिति लक्षणम् । रसरक्तादिधातुसप्तकनिवृत्त्यर्थं प्रकृत्यारम्भकत्वमिति विशेषणम्, नहि वातादिप्रकृतिवत् शास्त्रे रसरक्तादि प्रकृतिरुक्ता । वातादिप्रकृतित्वञ्च शरीरस्य वातादिदूषित-शुक्रशोणितारब्धत्वमिति विजयेनोक्तम् । चरकेऽपि "दोषा-नुशायिता ह्येषा देह-प्रकृतिरुच्यते" इति । चरकसुश्रुतादि-

---

पित्त और कफसे शरीर भी धृत होता है इसी कारण से कोई कोई वैद्य शरीर को त्रिस्थूण कहते हैं ॥ ३२ ॥

प्रकृतिरूप से जनक होकर जिस में दुष्टिका कर्तृत्व रहता है वही दोष है । यही वातादि दोषों के प्रकृष्ट-लक्षण जानना । रसादि सप्तधातु जिसमें दोष के लक्षणों से युक्त नहीं होते हैं इसी लिए प्रकृतिरूप से जनक यह विशेषण पदको दोषके लक्षण में सन्निवेश किया है क्योंकि आयुर्वेद शास्त्र में वातादि दोषों को जैसा प्रकृति कहते हैं तद्वत् रसादि सप्तधातुओं को प्रकृति कहाकर उल्लिखित नहीं हुआ है । शरीर का वातादि दोष से दूषित शुक्र

भिर्वातादेरिव रक्तस्यापि प्रकोपप्रकोपकालप्रकोपनस्थानविशे-
षरोगविशेषलिङ्गविशेषचिकित्साविशेषाणामभिधानाद्रक्तस्यापि
दोषत्वं पूर्वटीकाकारैराषाढवर्म्मवकुलेश्वरस्वामिदासादिभिः
स्वीकृतम् । तदप्येतेन व्यवच्छिन्नमधुनातनैरस्वीक्रियमाण-
त्वादिति ॥ ३३ ॥

नर्त्तेदेहः कफादस्ति न पित्तान्नच मारुतात् ।

और शोणित की परिचालकता ही वातादि दोषों का प्रकृ-
तित्व है । वात, पित्त और कफ ये तीन नहीं रहने से
शरीर का उपादानभूत धातुसप्त की कभी भी क्रिया नहीं
होती सुतरां वात पित्त कफ ही देहस्थिति के प्रधान
कारण हैं । इसी कारण से वे दोषत्रय देह-प्रकृति रूप से
निर्दिष्ट हैं । चरकसुश्रुतादि ऋषिओं ने वातादि दोषों
के बराबर रक्तका भी प्रकोप, प्रकोपकाल, प्रकोपका कारण
स्थानविशेष, रोगविशेष, लिङ्गविशेष, चिकित्साविशेष
प्रभृतिओं का उल्लेख किया है । इसी लिए आषाढवर्म्म
वकुल, ईश्वरसेन, स्वामिदास, प्रभृति टीकाकारों ने रक्त
का भी दोष माना है । आधुनिक वैद्य रक्त को दोष नहीं
स्वीकार करते इसीलिए प्रकृतिरूप से जनक दोषका यह
विशेषण पदसे रक्तको दोष से अलग किया है ॥ ३३ ॥

शोणितादपि वा नित्यं देह एतैस्तु धार्य्यते ॥ ३४ ॥

तत्र "वा" गति गन्धनयोरिति धातुः, "तप्"सन्तापे, श्लिष्" आलिङ्गने । एतेषां कृद्विहितैः प्रत्ययैर्वातःपित्तं-श्लेष्मेति च रूपाणि भवन्ति ॥ ३५ ॥

रूक्षः शीतो लघुः सूक्ष्मश्चलोऽथ विशदः खरः ।

वायु, पित्त और कफ को छोड़ कर कभी भी देहकी उत्पत्ति नहीं होती है एवं ये दोषों से तथा शोणित से देह धृत अर्थात् रक्षित होता है ॥ ३४ ॥

वा धातु गति और गन्ध इन दोनों अर्थों को लेता है, तप् धातु का अर्थ सन्ताप तथा श्लिष् धातुका अर्थ आलिङ्गन है । कृद्विहित प्रत्यय से वा धातु का रूप वायु, तप् धातुका रूप पित्त और श्लिष् धातु का रूप श्लेष्मा हुआ है । ये निरुक्ति से अर्थात् व्युत्पत्ति से समझना चाहिये कि गति और गन्धका ग्रहण वायु का स्वभाविक लक्षण है, सन्ताप पित्त का स्वभाविक लक्षण तथा आलिङ्गन अर्थात् सन्धि प्रभृतिओं का योजन श्लेष्माका स्वभाविकलक्षण होता है ॥ ३५ ॥

वायु का गुण तथा शान्ति का उपाय ।

रूक्ष, शीत, लघु, सूक्ष्म, चञ्चल, विशद तथा खर

विपरीतगुणैर्द्रव्यैर्मारुतः सम्प्रशाम्यति ॥ ३६ ॥

वातप्रकोपनानि खलु रूक्षलघुशीतदारुणखरविशदशुषिरकराणि शरीराणां तथा विधेषु हि शरीरेषु वायुराश्रयं लब्ध्वा आप्याय्यमानः प्रकोपमापद्यते । वातप्रशमनानि पुनः स्निग्धगुरूष्णश्लक्ष्णमृदुपिच्छिलघनकराणि शरीराणां तथा विधेषु शरीरेषु वायुरासज्यमानश्चरन् शान्तिमापद्यते ॥ ३७ ॥

वायुस्तन्त्रयन्त्रधरः प्राणोदानसमानव्यानापानात्मा प्रवर्तकश्चेष्टानामुच्चावच्चानां नियन्ता प्रणेताच मनसः । सर्वेन्द्रियाणामुद्योगकरः । सर्वेन्द्रियार्थानामभिवोढा सर्वशरीर-

---

ये वायु का गुण है। विपरीत गुण विशिष्ट द्रव्यों से वायु की शान्ति होती है ॥ ३६ ॥

रूक्ष, लघु, शीतल, दारुण, खर, विशद, तथा शुषीर कारक द्रव्यों से वायु प्रकुपित होती है । स्निग्ध, गुरु, उष्ण, श्लक्ष्ण, मृदु, पिच्छिल तथा घन गुण विशिष्ट द्रव्यों से वायु की शान्ति होतो है ॥ ३७ ॥

स्वभाविक अकुपित वायु का गुण ।

स्वाभाविक अर्थात् अकुपित वायु शरीरधारक है प्राणोदान समान व्यान अपानात्मक है, उच्चावच्च चेष्टासमुहका प्रवर्त्तक है, मनका नियन्ता तथा प्रणेता है।

व्यूहकरः सन्धानकरः शरीरस्य प्रवर्तकः वाचः प्रकृतिः शब्दस्पर्शयोः श्रोत्रस्पर्शनयोर्मूलम् । हर्षोत्साहयोर्योनिः समीरणोऽग्नेर्दोष-संशोषणः । क्षेप्ताबहिर्मलानां स्थूलानुस्रोतसां भेत्ता, कर्ता गर्भाकृतीनाम्, आयुषोऽनुवृत्तिः प्रत्ययभूतोभवत्यकुपितः ॥ ३८ ॥

प्रकुपितस्तु खलु शरीरे शरीरं नानाविधैर्विकारैरुपपतति । बलवर्णसुखायुषामुपघाताय मनोव्यावर्तयति,

---

समुदाय इन्द्रिओं के उद्योग कर्ता है, रूपरसादि इन्द्रिओं को बहन कर्ता है, शरीर धातु समुह को दृढ़ करनेवाला है। शरीर का सन्धानकर, वाक्य का प्रवर्तक, स्पर्श व शब्द की प्रकृति, श्रोत्र तथा स्पर्शका मूल हर्ष और उत्साह का योनी है। अग्नि का उत्तेजक, दोषों का शोधनकारी, मलका बहिःक्षेपनकारी, गर्भाकृति का कर्ता, और आयुका अस्तित्व का कारण होता है ॥ ३८ ॥

कुपित वायु का कर्म्म ।

शरीरस्थ वायु प्रकुपित होने से नानाविध रोगनिचय, शरीर का आक्रमण कर्ता, बल, वर्ण, सुख, तथा आयु प्रभृतिओं के नष्ट कर्ता, मनको स्थिरकर्ता, इन्द्रिय समूह का उपहनन कर्ता है। भय, शोक, मोह, दैन्य, और

सर्वेन्द्रियाण्युपहन्ति, विनिहन्तिगर्भान् विकृतिमापादयति, अतिकालं धारयति, भयशोकमोहदैन्यातिप्रलापान् जनयति प्राणांश्चोपरुणद्धि ॥ ३६ ॥

धरणीधारणं ज्वलनोज्ज्वालनमादित्यचन्द्रनक्षत्र-ग्रहगणानां सन्तानगतिविधानं सृष्टिश्च मेघानाम् । अपाञ्च विसर्गः प्रवर्त्तकः स्रोतसां, पुष्पफलानाञ्चाभिनिर्वर्त्तनम्, उद्भिदञ्चोद्भिदानाम्, ऋतुनां प्रविभागः । प्रविभागो-धातूनाम्, धातुमानसंस्थानव्यक्तिः बीजाभिसंस्कारः शस्या-भिवर्द्धनमविक्लेदोपशोषणमवैकारिकविकारश्चेति ॥ ४० ॥

अति प्रलापादिकों का उत्पादन कर्ता तथा प्राण का उपरोधक होता है ॥ ३६ ॥

वाह्यिक वायु की क्रिया ।

जो वायु बहिर्जगत् में विचरण करती है, उसका कार्य्य धरणी को धारण, अग्नि का उज्ज्वालन, चन्द्र, सूर्य्य तथा नक्षत्रों की स्थिति तथा गतिका बिधान, मेघ की सृष्टि, जल का वर्षण, स्रोत समूह का प्रवर्त्तन, पुष्प-तथा फल का उत्पादन, उद्भिद समूहका उर्ध्वभेदन, ऋतु तथा स्वर्णादि धातुओं का प्रविभाग, धातु समूहों का परिमाण तथा संस्थान प्रकाश, बीज का संस्कार, शस्य की वृद्धि, क्लेद अपगमन तथा रसों का शोषण और

अथ वातक्षयस्यलक्षणम् ।

तत्र वातक्षये मन्दचेष्टता अल्पवाक्त्वमप्रहर्षो मूढसंज्ञता च ॥ ४१ ॥

अथ अतिवृद्धवायुलक्षणम् ।

तत्र वातवृद्धौ त्वक्पारुष्यं कार्श्यं कार्ष्ण्यं गात्रस्फुरणमुष्णकामिता निद्रानाशोऽल्पबलत्वं गाढवर्चस्त्वं च ॥ ४२ ॥

अथ वायो स्थानानि ।

पक्वाशयकटीसक्थिश्रोत्रास्थिस्पर्शनेन्द्रियम् ।
स्थानं वातस्य तत्रापि पक्वाधानं विशेषतः ॥ ४३ ॥

अविकृति का विकार वाह्यिक बायु के स्वभाविक अवस्था में रहने से यह सब संघटित होता है ॥ ४० ॥

बात के क्षीण होने पर मनुष्यकी चेष्टा मन्द हो जाती है, थोड़ा बोलने लगता है, अतुष्टि होती है तथा संज्ञाहीनता को प्रगट कर देता है ॥ ४१ ॥

बात वृद्धि में त्वचा की कर्कशता, देहकी कृशता, कालापन, शरीरका फरकना, उष्णपदार्थ की इच्छा निद्रा का नाश बलहीनता और दस्तका गाढा होना ये सब लक्षण होते हैं ॥ ४२ ॥

बायु की अवस्थिति का स्थान छः है यथा पक्वाशय,

प्राणवायोः स्थानानि कर्म्माणि च ।

प्रणादिभेदात् पञ्चात्मा वायुः प्राणोऽत्रमूर्द्धगः ॥
उरः कण्ठचरो बुद्धि हृदयेन्द्रियचित्तधृक् ।
ष्ठीवनक्षवथूद्गार-निःश्वासान्नप्रवेशकृत् ॥ ४४ ॥

कमर, उरु, कर्ण, अस्थि और त्वचा । इस के बीच में पक्काशय बायु का प्रधान स्थान जानना ॥ ४३ ॥

प्राण वायु का स्थान और कर्म्म ।

वस्तुस्थिति में बायु एक होने पर भी प्राण, अपान, समान, व्यान भेद से पांच प्रकारकी होती है । जैसे एक मनुष्य अलग २ कर्म्म करके कर्म्मभेद से पूजक, गायक, याचक प्रभृति भिन्न २ नाम को प्राप्त होता है तद्वत् वायु एक होनेसे भी कर्म्मभेद से प्रणादि नाम विशेष को प्राप्त करता है । प्राणादि बायुपञ्चक के बीच में प्राण बायु मस्तकस्थ होकर भी वक्षस्थल तथा कण्ठ देश में बिचरण करती है । यह बायु बुद्धि, हृदय और चित्तको धारक है तथा ष्ठीवन, छींक, ढेकार, और निःश्वास को पैदा करने वाली है । प्राण बायु से भुक्त अन्न उदर में प्रविष्ट होता है ॥ ४४ ॥

उदानवायोः स्थानानि कर्म्माणि च ।

उरःस्थान मुदानस्य नासा नाभिगलांश्चरेत् ।
वाक्प्रवृत्तिप्रयत्नोर्जोबलवर्णस्मृतिक्रियः ॥ ४५ ॥

व्यानवायोः स्थानानि कर्म्माणि च ।

व्यानो हृदि स्थितः कृत्स्नदेहचारी महाजवः ।
गत्यपक्षेपणोत्क्षेपनिमेषोन्मेषणादिकाः ॥
प्रायः सर्वाः क्रियास्तस्मिन् प्रतिबद्धाः शरीरिणाम् ॥ ४६ ॥

उदान वायुका स्थान और कर्म्म ।

वक्षःस्थल उदान वायुका स्थान है ।

उदान वायु वक्षःस्थलस्थ होकर भी नासिका, नाभि, तथा गल देश में विचरण करती है । इस वायु से वाक्य का प्रवर्तन, कार्य्य में उद्यम, तथा उत्साह बल, वर्ण, और स्मृति क्रिया सम्पन्न होती हैं ॥ ४५ ॥

व्यान वायु का स्थान तथा कर्म्म ।

व्यान वायु प्रधानतः हृदयस्थ होकर भी समस्त देह में विचरण करती है । यह महा वेगवान् है । प्राणियों के गमन, अङ्गका अधःक्षेप, चक्षुके निमेष तथा उन्मेष और जृम्भादि यावत् क्रिया व्यान वायु से निष्पन्न होती है ॥ ४६ ॥

समानवायोः स्थानानि कर्म्माणिच ।

समानोऽग्नि समीपस्थः कोष्ठे चरति सर्वतः ।
अन्नं गृह्णाति पचति विरेचयति मुञ्चति ॥ ४७ ॥

अपानवायोः स्थानानि कर्म्माणि च ।

अपानोऽपानगः श्रोणिवस्तिमेढ्रोरुगोचरः ।
शुक्रार्त्तवशकृन्मूत्रगर्भनिष्क्रमणक्रियः ॥ ४८ ॥

पित्तस्य गुणास्तथा प्रशमनोपायश्च ।

सस्नेहमुष्णं तीक्ष्णञ्च द्रवमम्लं सरं कटु ।
विपरीतगुणैः पित्तं द्रव्यैराशु प्रशाम्यति ॥ ४९ ॥

समान वायु का स्थान तथा कर्म्म ।

समान वायु पाचकाग्निके समीप है । यह वायु कोष्ठ को चारो तरफ विचरण करती है अपक्क अन्नको आमाशय में धारण करती है । परिपाक तथा कठिन अन्न को पाकार्थ विभाग और मलमूत्रादि को अधो निःस्सारण करती है ॥ ४७ ॥

अपान वायुका स्थान और कर्म्म ।

अपान वायु का प्रधान स्थान गुदा देश में है । अपान वायु गुदा देश में रह कर भी श्रोणि, वस्ति, लिङ्ग तथा ऊरुदेश में विचरण करती है । यह वायु शुक्र, आर्तव, मल, मूत्र और गर्भको बाहर निकाल देती है ॥ ४८ ॥

अथ पित्तस्य स्थानानि ।

नाभिरामाशय स्वेदो लसीका रुधिरं रसः ।
दृक्स्पर्शनञ्च पित्तस्य नाभिरत्र विशेषतः ॥ ५० ॥

कुपिताकुपितपित्तस्य गुणाः ।

पक्तिमपक्तिं दर्शनमदर्शनं मात्रामात्रात्वमुष्माणः

पित्तका गुण तथा शान्ति का उपाय ।

पित्त स्नेहयुक्त, तीक्ष्ण, द्रव, अम्ल, सर तथा कटु है । विपरीत गुण विशिष्ट द्रव्यों से पित्तकी शान्ति होती है ॥ ४९ ॥

अथ पित्तका स्थान ।

नाभि, आमाशय, स्वेद, लसीका, (जलसदृश पदार्थ), रक्त, रस, चक्षु, और त्वचा ये सब पित्त का स्थान जानना । इसके बीच में नाभि पित्तका प्रधान स्थान है । त्वचा, वायु तथा पित्त का स्थान है, अग्नि का सखा वायु है और पित्त ही अग्नि है । सुतरां सखित्व निबन्धन दोनों का एक स्थान में अवस्थिति विरोध-नहीं होता ॥ ५० ॥

कुपिताकुपित पित्तका गुण ।

शारीरिक पित्तान्तर्गत अग्नि भी कुपिताकुपित भाव से शुभाशुभ कर्म्म करता है । पित्त प्रकुपित होने से

प्रकृतिविकृतिवर्णौ शौर्य्यम्भयं क्रोधं हर्षं मोहं प्रसादमित्येवमादीनि चापराणि द्वन्द्वादीनीति ॥ ५१ ॥

पाचकपित्तस्य स्थानानि कर्म्माणि च ।

पित्तं पञ्चात्मकं तत्र पक्वामाशयमध्यगम् ।
पञ्चभूतात्मकत्वेऽपि यत्तैजसगुणोदयात् ॥
त्यक्तद्रवत्वं पाकादिकर्म्मणानलशब्दितम् ।
पचत्यन्नं विभजते सारकिट्टौ पृथक् तथा ॥

अपरिपाक, अदर्शन, ऊष्मा की अधिकता, भय, क्रोध, और मोह प्रभृति उत्पन्न करता है। पित्त स्वभाविक अवस्था में रह कर परिपाक, दर्शन, उष्मा की यथायथ मात्रा और बल वर्ण तथा हर्ष प्रभृति उत्पन्न कर देता है ॥ ५१ ॥

पाचक पित्त का स्थान और कर्म्म ।

वायु के माफिक पित्त भी पांच प्रकार के हैं। वे पांच प्रकार के पित्त के बीच में जो पित्त पक्वाशय तथा आमाशय के मध्यगत और जो पञ्चभूतात्मक होने से भी आग्नेय गुण की अधिकता से सोम्य गुण के नष्ट होने के कारण से कठिन होकर पाकक्रिया के सम्पादन से अग्नि-नाम से अभिहित होता है, उसको पाचक पित्त कहते हैं। यह पाचक पित्त अन्नको परिपाक करता, सार और मल

तत्रस्थमेव पित्तानां शेषाणामप्यनुग्रहम् ।
करोति बलदानेन पाचकं नाम तत् स्मृतम् ॥ ५२ ॥

रञ्जकपित्तस्य स्थानानि कर्म्माणि च ।

आमाशयाश्रयं पित्तं रञ्जकं रसरञ्जनात् ॥ ५३ ॥

साधकपित्तस्य स्थानानि कर्माणि च ।

बुद्धिमेधाभिमानाद्यैरभिप्रेतार्थसाधनात् ।
साधकं हृद्गतं पित्तं रूपालोचनतः स्मृतम् ॥—
सोऽभिप्रार्थितमनोरथसाधनकृदुक्तः ॥ ५४ ॥

पदार्थ को अलग करता तथा आमाशय और पक्वाशय के बीच में अपने स्थान में रह कर अवशिष्ट रञ्जकादि पित्तों को बल प्रदान करके उपकार करता है ॥ ५२ ॥

रञ्जकपित्तका स्थान और कर्म्म ।

जो आमाशय में स्थित है वह रस को रञ्जित अर्थात् रक्तवर्ण को प्राप्त करदेता है । इसी लिए रञ्जक नाम से अभिहित होता है ॥ ५३ ॥

साधक पित्तका स्थान और कर्म्म ।

जो पित्त हृदय में स्थित है, उसी को साधक पित्त कहते हैं । बुद्धि, मेधा, और अभिमानादिओं से अभिलषित विषय को साधन करता है इस लिए उसका नाम साधक पित्त है ॥ ५४ ॥

आलोचकपित्तस्य स्थानानि कर्म्माणि च ।

दृकस्थमालोचकं पित्तं कृष्णगौरादिदर्शकम् ॥ ५५ ॥

भ्राजकपित्तस्य स्थानानि कर्म्माणि च ।

त्वचि निवृति यत्पित्तं भ्राजकं भ्राजनात्त्वचः ।
सोऽभ्यङ्गपरिषेकावगाहावलेपनादीनां क्रियाद्रव्याणां
पक्ता छायानाञ्च प्रकाशकः ॥ ५६ ॥

अथ पित्तक्षयस्य लक्षणम् ।

पित्तक्षये मन्दोष्माग्निता, निष्प्रभत्वञ्च ॥ ५७ ॥

आलोचक पित्तका स्थान और कर्म्म ।

नेत्रस्थ पित्त कृष्ण गौर प्रभृति रूपको ग्रहण करता है । इसीलिए आलोचक नाम से अभिहित होता है ॥ ५५ ॥

भ्राजक पित्तका स्थान और कर्म्म ।

त्वचा में रहने वाला जो पित्त है वह त्वचा को भ्राजक अर्थात् दीपन करने के लिए भ्राजक नाम से अभिहित होता है । भ्राजक पित्त अभ्यङ्ग, लेप, तथा परिषेकादि को पाककरता और छाया को प्रकाश करता है ॥५६॥

पित्तक्षयकालक्षण ।

पित्तक्षय होने से ऊष्मा की अल्पता अग्नि की मन्दता तथा प्रभा की हानि होती है ॥ ५७ ॥

अथ प्रवृद्धपित्तस्य लक्षणम् ।

पित्तवृद्धौ पीतावभासता सन्तापः शीतकामित्व-मल्पनिद्रता मूर्छा बलहानिरिन्द्रियदौर्बल्यं पीतविण्मूत्र-नेत्रत्वञ्च ॥ ५८ ॥

अथ श्लेष्मणः गुणाः कर्म्माणि च ।

गुरुशीतमृदुस्निग्धमधुरस्थिरपिच्छिलाः ।
श्लेष्मणः प्रशमं यान्ति विपरीतगुणैर्गुणाः ॥ ५९ ॥

कफस्य स्थानानि ।

उरःकण्ठशिरःक्लोम-पर्वाण्यामाशयोरसः ।

पित्तवृद्धिका लक्षण ।

पित्तके बढ़नेपर पीतवर्णता, सन्ताप, शीतकामिता, निद्राकी अल्पता, मूर्छा, बलकीहानी, इन्द्रिओं की दुर्बलता तथा मलमूत्र और नेत्रका रङ्ग पिलासा हो जाता है ॥५८॥

श्लेष्मा का गुण और कर्म्म ।

श्लेष्मा भारी, शीतल, मुलायम, चिकना, मधुर, स्थिर, और पिच्छिल है । विपरीत गुणविशिष्ट द्रव्यों से कफ की शान्ति होती है ॥ ५९ ॥

श्लेष्माकास्थान ।

वक्षःस्थल, कण्ठ, मस्तक, पिपासास्थान, पर्वस्थान आमाशय, रस, मेदा, नासिका, तथा जिह्वामें कफका-

मेदो घ्राणञ्च जिह्वा च कफस्य सुतरामुरः ॥ ६० ॥

अथावलम्बक श्लेष्मणः स्थानानि कर्म्माणि च ।

श्लेष्मा तु पञ्चधोरस्थः स त्रिकस्थः स्ववीर्य्यतः ।
हृदयस्यान्नवीर्य्याच्च तत्स्थ एवाम्बुकर्म्मणा ॥
कफधाम्नाञ्च शेषाणां यत्करोत्यवलम्बनम् ।
अतोऽवलम्बकः श्लेष्मा यस्त्वामाशयसंस्थितः ॥ ६१ ॥

क्लेदकश्लेष्मणः स्थानानि कर्म्माणि च ।

क्लेदकः सोऽन्नसङ्घातः क्लेदनाद्रसबोधनात् ॥ ६२ ॥

स्थान निर्दिष्ट है । इसके बीच में वक्षःस्थलही कफका प्रधानस्थान जानना ॥ ६० ॥

अवलम्बक श्लेष्माका स्थान तथा कर्म्म ।

श्लेष्माभी पांच प्रकारके हैं । इसके बीच में जो श्लेष्मा उरस्थ है वह अपनी शक्ति से त्रिकभागका अन्न-वीर्य्यरूपरससे हृदयका तथा अपना स्थान अर्थात् वक्षःस्थलमें रहकर अम्बुकर्म्म से (क्लेद और श्लेष्मादियों से) तथा अन्यान्य श्लेष्मास्थान के अवलम्बन अर्थात् अपने अपने कर्म्म में शक्तिको उत्पादन करता है । इसलिए अवलम्बन नाम से अभिहित होता है ॥ ६१ ॥

क्लेदकश्लेष्माकास्थान तथा कर्म्म ।

जो श्लेष्मा आमाशयमें स्थित है वह कठिन अन्न

बोधकश्लेष्मणः स्थानानि कर्म्माणि च ।

बोधको रसनास्थायी शिरःसंस्थोऽक्षतर्पणात् ॥ ६३ ॥

तर्पकश्लेष्मणः स्थानानि कर्म्माणि च ।

तर्पकः सन्धिसंश्लेषात् श्लेषकः सन्धिषु स्थितः ॥ ६४ ॥

अथ श्लेष्मक्षयलक्षणम् ।

अथ श्लेष्मक्षये रूक्षतान्तर्दाहः आमाशयेतराशय-शून्यता सन्धिशैथिल्यं तृष्णा दौर्बल्यं प्रजागरश्च ॥ ६५ ॥

समूहों को छिन्न करता है इसीलिए क्लेदकनाम से अभि-हित होता है ॥ ६२ ॥

बोधक श्लेष्माका स्थान तथा कर्म्म ।

जिह्वास्थित श्लेष्मा से मधुरादिरसबोधित होता है इसीलिए इसको बोधक कहते हैं ॥ ६३ ॥

तर्पक श्लेष्मा का स्थान और कर्म्म ।

सन्धिस्थितश्लेष्मा चक्षुरादि इन्द्रियोंको तृप्तिप्रदान करता है इसीलिए श्लेषक नाम से कथित होता है ॥ ६४ ॥

श्लेष्माक्षय का लक्षण ।

श्लेष्माके क्षय होने से रूक्षता, अन्तर्दाह, आमाशय तथा अन्यान्य श्लेष्माशय में कफकाकम हो जाना, सन्धिकी शिथिलता, पिपासा, दुर्वलता और निद्राका नाश ये सब लक्षण प्रगट होते हैं ॥ ६५ ॥

प्रवृद्धश्लेष्मणो लक्षणम् ।

श्लेष्मप्रवृद्धौ शौक्ल्यं शैत्यं स्थैर्य्यं गौरवमवसाद-स्तन्द्रा निद्रा सन्ध्यस्थिविश्लेषश्च ॥ ६६ ॥

दोषत्रयस्य प्रधानस्थानानि ।

तत्र समासेन वातः श्रोणीगुदसंश्रयः ।

तदुपर्य्यधोनाभेः पक्वाशयः, पक्वामाशयोर्मध्यं पित्तस्य ।

आमाशय श्लेष्मणः ॥ ६७ ॥

अथ दोषस्य ह्रासवृद्धौ कारणम् ।

सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणम् ।

प्रवृद्धश्लेष्माकालक्षण ।

श्लेष्मा अधिक बढ़ने से शुक्लता, शीतता, स्थिरता, गुरुता, अवसाद, निन्द्रा, सन्धि और अस्थिओं का विश्लेष ये सब लक्षण होते हैं ॥ ६६ ॥

दोषत्रयका प्रधानस्थान ।

संक्षेप से उक्त हुआ है कि श्रोणी और गुदादेश वायु का स्थान है । श्रोणी और गुदा देश के उपर नाभि के अधोदेशे में पक्वाशय अवस्थित है, वह पक्वाशय और आमाशय के बीच में पित्त का स्थान है और आमाशय श्लेष्माका स्थान जानना ॥ ६७ ॥

दोषका ह्रास तथा वृद्धि का साधारण कारण ।

सर्वदा तथा सर्वावस्था में भाव-पदार्थों के अर्थात्

ह्रासहेतुर्विशेषश्च प्रवृत्तिरुभयस्य तु ॥
सामान्यमेकत्वकरं विशेषस्तु पृथक्त्वकृत् ।
तुल्यार्थता हि सामान्यं विशेषस्तु विपर्य्यय: ॥ ६८ ॥

अथ वातस्य प्रकोपकाल: ।

स: (वायु:) शीताभ्रप्रवातेषु धर्म्मान्ते च विशेषत: ।
प्रत्यूषस्यपराह्णे तु जीर्णेऽन्ने च प्रकुप्यति ॥ ६९ ॥

द्रव्य, गुण और कर्म्म के जो समान संयोग वही पदार्थों की वृद्धिके कारण होते हैं तथा भाव पदार्थों का जो विशेष वा विश्लेषणभाव वही पदार्थोंका ह्रासका कारण जानना । परन्तु वृद्धि तथा ह्रास ये दोनों ही संयोग की अपेक्षा रखता है । कोई द्रव्य में तत्समानधर्म्मि द्रव्य वा तत्समानकर्म्म युक्त होने से वह द्रव्य वा कर्म्म वृद्धि को प्राप्त होता हैं पुन: वह द्रव्य वा कर्म्म में अगर तद्विपरीत द्रव्य, गुण वा कर्म्म संयुक्त किया जाए तो द्रव्य का ह्रास होता है । अगर जलमें जलीय वस्तुका संयोग हो तो जलकी वृद्धि होगी तथा जलमें अगर आग्नेय वस्तु का संयोग किया जाय तो जलका ह्रास होगा ॥ ६८ ॥

वायुका प्रकोपकाल ।

शीतकाल में, मेघोदयमें, प्रबलवायु वहने के समय में,

पित्तस्य प्रकोपकालः ।

तदुष्णैरुष्णकाले च मेघान्ते च विशेषतः ।
मध्याह्ने चार्द्धरात्रे च जीर्य्यत्यन्ने च कुप्यति ॥ ७० ॥

कफस्य प्रकोपकालः ।

स शीतैः शीतकाले च वसन्ते च विशेषतः ।
पूर्वाह्ने च प्रदोषे च भुक्तमात्रे च कुप्यति ॥ ७१ ॥

सोमसूर्य्याऽनिलैः सह दोषत्रयाणां तुलना ।

विसर्गादानविक्षेपैः सोमसूर्य्यानिला यथा ।

वर्षाकाल में, ब्राह्ममुहूर्त में, सायंकाल में और अन्न जीर्ण होने पर वायु विशेषरूप से प्रकुपित होती है ॥ ६९ ॥

पित्तका प्रकोपकाल ।

उष्णसेवन से, उष्णकाल में, शरद्काल में, मध्याह्न में, अर्धरात्री में भुक्त अन्नका जीर्ण होने पर पित्त विशेषरूप से प्रकुपित होता है ॥ ७० ॥

कफका प्रकोपकाल ।

शीतलद्रव्य के सेवन से, शीतकाल में, बसन्त काल में पूर्वाह्नमें, प्रदोषकाल में, तथा भोजन करने के बादही श्लेष्मा विशेषरूप से प्रकुपित होता है ॥ ७१ ॥

चन्द्रसूर्य्य और वायु के साथ वातादि दोषोंकी तुलना ।

चन्द्रमा, सूर्य्य तथा वायु जैसे यथा क्रमसे विसर्ग, आदान

धारयन्ति जगद्देहं कफपित्तानिलास्तथा ॥ ७२ ।

सर्वं एव खलु वातपित्तश्लेष्माणः प्रकृतिभूताः पुरुष-

और विक्षेप यह त्रिविध कर्म से जगत् को धारण करता है ऐसे ही कफ, पित्त तथा वायु भी उक्त त्रिविध कर्म से ही देह को धारण करता है । विसर्ग शब्दका अर्थ सर्जन अर्थात् शीतल किरणरूप सुधा वर्षण से बलको प्रदान करना । ग्रहण शब्दका अर्थ उष्ण किरण से वलका ग्रहण । विक्षेपका अर्थ नानाविध उपायों से शीतोष्णादिकों के प्रेरण । शीतांशु जैसा सुधांशु वर्षण से जगत् का बलप्रदान करता है, कफभी तद्वत् अपना सोम गुण से शरीर-बलको प्रदान करता है । मार्तण्ड जैसे उष्ण किरण राजी से रस को शोषण करके जगत् के बलको आकर्षण करता है पित्त भी तद्वत् आग्नेय गुण से शरीर का शोषण कर के शरीर-बलको आकर्षण करता है । बाह्य वायु जैसे नाना-प्रकार उपायों से जगत् में शीतोष्णादिकों के प्रेरण करता है तद्वत् देहस्थ वायु भी शीतोष्णादियों के नानाविध उपायों से शरीर में प्रेरण करता है ॥ ७२ ॥

संक्षेप से कहना होतो मानव देह में वायु, पित्त और कफ प्रकृत अवस्था में रहने से मनुष्य का इन्द्रिय,

भव्यापन्नेन्द्रियं बलवर्णसुखोपपन्नमायुषा महतोपपादयन्ति । सम्यगिवाचरिताः धर्म्मार्थकामा निःश्रेयसेन महतोपपादयन्ति पुरुषमिह परकाले च विकृतास्त्वेन महता विपर्य्ययेणोपपादयन्ति ॥ ७३ ॥

बङ्गदेशान्तर्गत—बरिशालमण्डलस्थित—खलिसाकोटाग्रामनिवासि—वैद्याचार्य्य-कविराज-श्रीप्रसन्नकुमार-कविरत्नात्मज—वाराणसी—हिन्दूविश्वविद्यालयायुर्वेदाध्यापक-कविराज—श्रीनिशिकान्त वैद्यशास्त्रि—सङ्कलित—शरीर-विज्ञाने दोषदुष्यादिविज्ञानं नाम द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

बल, वर्ण, स्वास्थ्य तथा आयुकी वृद्धि होती है और जो आहार विहारादियों से वायु, पित्त तथा कफ स्वभाविक अवस्था में ठहर सकते हैं । ऐसा ही आहार विहारादियोंके आचरण कियाजायतो मनुष्य इहकाल तथा परकाल में धर्म्मार्थकाम यह त्रिवर्ग सम्पत्तियों को लाभकर के सुखी हो सकता है परन्तु यह त्रिदोष जब विकृतिको प्राप्त होता है तब ये समुदायको नष्टकर देता है ॥ ७३ ॥

बङ्गदेशान्तर्गत बरिशाल जिलास्थित खलिसाकोटा ग्राम में रहनेवाले वैद्याचार्य्य कविराज श्रीप्रसन्नकुमार कविरत्नजी के पुत्र काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के आयुर्वेद

तृतीयोऽध्यायः।

अथ शुक्रार्त्तवविज्ञानीयाध्यायं व्याख्यास्यामः।

स्फटिकाभं द्रवं स्निग्धं मधुरं मधुगन्धि च।
शुक्रमिच्छन्ति केचित्तु तैलक्षौद्रनिभं तथा॥ १॥
शशासृक् प्रतिमं यत्तु यद्वालाक्षारसोपमम्।
तदार्त्तवं प्रशंसन्ति यद्वासो न विरञ्जयेत्॥ २॥
वातपित्तश्लेष्मकुणपग्रन्थिपूतिपूयक्षीणमूत्रपुरीषरेतसः प्रजोत्पादने न समर्था भवन्ति॥ ३॥

के अध्यापक कविराज श्रीनिशिकान्त वैद्यशास्त्री का बनायां हुआ शरीर-विज्ञान का दोषदुष्यादि विज्ञान नामक द्वितीय अध्याय समाप्त हुआं॥

जो शुक्र स्फटिकाभ, द्रव, चिकना, मधुर, तथा मधुगन्धि है उसको विशुद्ध शुक्र जानना। कोई २ कहते है कि तेल और मधुके सदृश शुक्रभी विशुद्ध होता है॥ १॥

जो ऋतु-शोणित खरहा की रक्त के सदृश अथवा लाहका रस के सदृश लोहित वर्णका होता है और जो ऋतु-शोणित से रञ्जित वस्त्रको जलमें धोने से दाग शून्य होता है वह ऋतु-शोणित विशुद्ध जानना॥ २॥

जो पुरुष का शुक्र वायु, पित्त तथा श्लेष्मा के प्रकोप

तेषु वातवर्णवेदनं वातेन। पित्त वर्णवेदनं पित्तेन। श्लेष्मवर्णवेदनं श्लेष्मणा। शोणितवर्णवेदनं कुणपगन्ध्यनल्पं रक्तेन। ग्रन्थीभूतं श्लेष्मवाताभ्याम्। पूतिपूयनिभं पित्तश्लेष्मभ्याम्। क्षीणं पित्तमारुताभ्याम्। मूत्रपुरीषगन्धि सान्निपातेनेति। तेषु कुणपग्रन्थिपूतिपूयक्षीणरेतसः कृच्छ्रसाध्याः। मूत्रपुरीषगन्धिस्त्वसाध्याः। साध्यमन्यच्चेति ॥ ४ ॥

से कुणप (शवगन्धि), ग्रन्थि (गाठ पड़जाना) पूति और पीव के माफिक, क्षीण अथवा मलपुरीषगन्धि वह पुरुष सन्तानोत्पादन में समर्थ नहीं होता है ॥ ३ ॥

वायु से दूषित शुक्र अरुणकृष्णादि वातवर्ण तथा तोदभेदादि वातवेदना विशिष्ट होता है। पित्त से दूषित-शुक्र पीतनीलादि वर्ण तथा ओषचोषादि पित्तवेदना युक्त होता है। श्लेष्मा से दूषितशुक्र श्लेष्मवर्ण अर्थात् शुक्ल-वर्ण और कण्डु प्रभृति श्लेष्मवेदना युक्त होता है। शोणित से दूषित शुक्र लोहित वर्ण तथा शोणित वेदना अर्थात् पित्त वेदनावत् ओषचोषादि वेदना और शवदुर्गन्धि तथा अनल्प होता है। वातश्लेष्मा से दूषित शुक्र ग्रन्थिल होता है। पित्तश्लेष्मा से दूषित शुक्र पूतिपूयसदृश होता है। त्रिदोषसे दूषित शुक्र मूत्रपुरीषगन्धि होता है। इस

आर्तवमपि त्रिभिर्दोषैः शोणितचतुर्थैः पृथक् द्वन्द्वैः समस्तैश्चोपसृष्टमबीजं भवति । तदपि दोषवर्णवेदनादिभिर्विज्ञेयम् । तेषु कुणपग्रन्थिपूयक्षीणमूत्रपुरीषप्रकाशमसाध्यम् । साध्यमन्यद्भवति ॥ ५ ॥

शुक्रदोषस्य चिकित्सा ।

तेष्वाद्यान् शुक्र-दोषांस्त्रीन् स्नेहस्वेदादिभिर्जयेत् ।

के बीचमें शवगन्धि, ग्रन्थिल, पूतिपूयाभ तथा क्षीण शुक्र-कृच्छ्रसाध्य है। और मूत्रपु रीषगन्धि शुक्र असाध्य जानना ॥४।

आर्तव-शोणित भी वायु, पित्त, कफ तथा रक्त इस के बीच में एक एक दोष से अथवा दो दो दोषों से किम्बा दोषत्रय से दूषित होने के कारण से वह ऋतु-शोणित भी सन्तानोत्पादन करने में समर्थ नहीं होता है। आर्तव-शोणित जिस दोष से किंवा दो दोषों से अथवा दोषत्रय से प्रदुष्ट होता है वह दोष वा दोषों के वर्ण तथा वेदनाविशिष्ट होता है। दूषित आर्तव-शोणित के बीच में शवदुर्गन्धि, ग्रन्थिल, पूति, पूय-सन्निभ, क्षीण और मूत्र-पुरीष-गन्धि आर्तवशोणित असाध्य जानना और अपर प्रकार के साध्य जानना ॥ ५ ॥

शुक्रदोष की चिकित्सा ।

शुक्र दोष के बीच में प्रथम तीन प्रकार के शुक्र दोष

क्रियाविशेषैर्मतिमांस्तथा चोत्तरबस्तिभिः ॥ ६ ॥
पाययेन्नरं सर्पिर्भिषक् कुणपरेतसि ।
धातकीपुष्प-खदिर-दाड़िमार्ज्जुन-साधितम् ॥
पाययेदथवा सर्पिः शालसारादिसाधितम् ॥ ७ ॥
ग्रन्थीभूते शठीसिद्धं पलाशे वापि भस्मनि ॥ ८ ॥

के अर्थात् शुक्रकी वात-दुष्टि, पित्त-दुष्टि तथा कफ दुष्टि के प्रशमन के लिये स्नेहस्वेदादि क्रियाविशेषका तथा उत्तर-बस्ति का प्रयोग करना ॥ ६ ॥

शुक्र शव (मुर्दा) के तरह दुर्गन्धयुक्त होने से धातकी पुष्प, (धावइ) खेर की लकड़ी, दाड़िम तथा अर्जुन वृक्षका छाल, (कोह) ये सब द्रव्यों के काढ़ा के साथ घृत को पाक करके रोगी को पान कराना चाहिये। अथवा शालसारादिगण के क्काथ और कल्क के साथ घृत को पाक करके रोगी को पानार्थ देना चाहिये ॥ ७ ॥

शुक्र गांठ के तरह हो जाय तो कचूर का काढ़ा तथा कल्कके साथ घृत को पकाकरके वह घृत रोगी को पानार्थ देना। अथवा पलाश (ढाक) भस्म एक आढ़क (आठसेर) छः आढक जल में (अर्थात् द्रवचीच दूना लेनेके नियम से बारह आढक जल लेना) पाक करके

वरुणकादिभ्यां पूयप्रख्ये च साधितम् ॥ ९ ॥
विट्प्रभे पाययेत्सिद्धं चित्रकोशीरहिङ्गुभिः ॥ १० ॥
यदुक्तं वाजीकरणे तत्कार्य्यं क्षीणरेतसि ॥ ११ ॥
स्निग्धं वान्तं विरिक्तञ्च निरूहमनुवासितम् ।
योजयेच्छुक्रदोषार्त्तं सम्यगुत्तरवस्तिना ॥ १२ ॥

चतुर्थांश अवशिष्ट रहने पर उसको उतारदेना और २१ बार छानना । वह २६ सेर चार जलमें ४ सेर घृत पाक करके पानार्थ रोगी को देना ।

धातु (शुक्र) पूय सदृश (पिबके तरह) होने पर वरुणादि तथा न्यग्रोधादिगणको क्राथ और कल्क के साथ घृत पाक करके रोगी को पानार्थ देना ॥ ९ ॥

शुक्र पुरीषगन्धि होनेपर चित्रक (चिता) का मूल तथा हिंगु के कल्क के साथ घृत पाक करके रोगी को पानार्थ देना ॥ १० ॥

शुक्र के क्षीण होने पर वाजीकरणोक्त औषध की व्यवस्था करनी चाहिये ॥ ११ ॥

शुक्रदुष्टि की साधारण चिकित्सा ।

शुक्रदोषार्त्त आदमी को यथाक्त स्नेह से स्निग्ध, वमन

बलेन नारी परितोषमेति नहीनवीर्य्यस्य कदापि सैाख्यम् ।
अतोबलार्थे रतिलम्पटस्य वाजीविधानं प्रथमं विदध्मे ॥१३॥

तिलमाषविदारीणां शालीनां चूर्णमेव वा ।
पौण्ड्रकेक्षुरसेनार्द्रं मर्द्दितं सैन्धवान्वितम् ॥
वराहमेदसायुक्तं घृतेनोत्कारिकां पचेत् ।
तां भक्षयित्वा पुरुषो गच्छेत्तु प्रमदाशतम् ॥ १४ ॥

से वान्त, विरेचन से विरिक्त, निरुहण से निरूहित तथा अनुवासन से अनुवासित करके चिकित्सा करनी चाहिये ॥१२॥

स्त्री बल से परितोष को लाभ करती है, हीनवीर्य्य पुरुषके साथ कभी भी मित्रता नही होती । अतएव रति-लम्पट पुरुष के बल के लाभ के लिये वाजीकरणोक्त दवाईयां कहेगें ॥ १३ ॥

तिल, माष, विलइयाकन्द और शाली चावल इन सबों का चूर्ण इक्षु का रस में मर्दन तथा सैन्धवनमक से युक्त कर के उस, में शूकर की मेदा मिलाकर घृत में हलवा के माफिक पाक करना । वह उत्कारिका (हलुवा) भक्षण करने से मनुष्य एक शत स्त्री के साथ सम्भोग कर सकता है ॥ १४ ॥

पिप्पलीलवणोपेतं बस्ताण्डं क्षीरसर्पिषा ।
साधितं भक्षयेद्यस्तु सगच्छेत्प्रमदा-शतम् ॥ १५ ॥
पिप्पलीमाषशालीनां यवगोधूमयोस्तथा ।
चूर्णभागैः समस्तैस्तु घृते पूपलिकां पचेत् ॥
तां भक्षयित्वा पीत्वा तु शर्करामधुरं पयः ।
नरश्चटकवद्गच्छेद्दशवारान्निरन्तरम् ॥ १६ ॥
चूर्णं विदार्य्या सुकृतं स्वरसेनैव भावितम् ।
सर्पिर्मधुयुतं लीढ्वा दशस्त्रीरधिगच्छति ॥ १७ ॥

छागका अण्डकोश, पीपरके चूर्ण और लवण के साथ मिलाय के वह दुग्ध और घृत में पाक करके भक्षण करने से भी मनुष्य शत स्त्रीमें गमन कर सकता है ॥ १५ ॥

पीपर, माष, शालीचावल, यव, तथा गोधूम इन सब द्रव्यों के चूर्ण समान मात्रा में ग्रहण करके उसीसे पीठा-बनाना । इस पीठा को खाकर शर्करा, मधु और दुग्धा-नुपान करनेसे चटक (गौरैया) पक्षी के माफिक निरन्तर तृप्तिके साथ १० वार स्त्री के साथ सम्भोग करसकता है ॥१६॥

विदारिगन्धा का चूर्ण इसी के रस से २१ बार भावित करके घृत और मधु के साथ लेहनपूर्वक दुग्ध पान करने से पुरुष १० स्त्री के साथ सम्भोग कर सकता है ॥ १७ ॥

बलेन नारी परितोषमेति नहीनवीर्य्यस्य कदापि सौख्यम् ।
अतोबलार्थे रतिलम्पटस्य वाजीविधानं प्रथमं विदध्ये ॥१३॥

तिलमाषविदारीणां शालीनां चूर्णमेव वा ।
पौण्ड्रकेक्षुरसेनाद्रं मर्द्दितं सैन्धवान्वितम् ॥
वराहमेदसायुक्तं घृतेनोत्कारिकां पचेत् ।
तां भक्षयित्वा पुरुषो गच्छेत्तु प्रमदाशतम् ॥ १४ ॥

से वान्त, विरेचन से विरिक्त, निरूहण से निरूहित तथा अनुवासन से अनुवासित करके चिकित्सा करनी चाहिये ॥१२॥

स्त्री बल से परितोष को लाभ करती है, हीनवीर्य्य पुरुषके साथ कभी भी मित्रता नहीं होती । अतएव रति-लम्पट पुरुष के बल के लाभ के लिये वाजीकरणोक्त दवाईयां कहेगें ॥ १३ ॥

तिल, माष, विलइयाकन्द और शाली चावल इन सबों का चूर्ण इक्षु का रस में मर्दन तथा सैन्धवनमक से युक्त कर के उस, में शूकर की मेदा मिलाकर घृत में हलुवा के माफिक पाक करना । वह उत्कारिका (हलुवा) भक्षण करने से मनुष्य एक शत स्त्री के साथ सम्भोग कर सकता है ॥ १४ ॥

पिप्पलीलवणोपेतं बस्ताण्डं क्षीरसर्पिषा ।
साधितं भक्षयेद्यस्तु सगच्छेत्प्रमदा-शतम् ॥ १५ ॥
पिप्पलीमाषशालीनां यवगोधूमयोस्तथा ।
चूर्णभागैः समस्तैस्तु घृते पूपलिकां पचेत् ॥
तां भक्षयित्वा पीत्वा तु शर्करामधुरं पयः ।
नरश्चटकवद्गच्छेद्दशवारान्निरन्तरम् ॥ १६ ॥
चूर्णं विदार्य्या सुकृतं स्वरसेनैव भावितम् ।
सर्पिर्मधुयुतं लीढ्वा दशस्त्रीरधिगच्छति ॥ १७ ॥

छागका अण्डकोश, पीपरके चूर्ण और लवण के साथ मिलाय के वह दुग्ध और घृत में पाक करके भक्षण करने से भी मनुष्य शत स्त्रीमें गमन कर सकता है ॥ १५ ॥

पीपर, माष, शालीचावल, यव, तथा गोधूम इन सब द्रव्यों के चूर्ण समान मात्रा में ग्रहण करके उसीसे पीठा बनाना । इस पीठा को खाकर शर्करा, मधु और दुग्धानुपान करनेसे चटक (गौरैया) पक्षी के माफिक निरन्तर तृप्तिके साथ १० बार स्त्री के साथ सम्भोग करसकता है ॥१६॥

विदारिगन्धा का चूर्ण इसी के रस से २१ बार भावित करके घृत और मधु के साथ लेहनपूर्वक दुग्ध पान करने से पुरुष १० स्त्री के साथ सम्भोग कर सकता है ॥ १७ ॥

बलेन नारी परितोषमेति नहीनवीर्य्यस्य कदापि सौख्यम् ।
अतोबलार्थं रतिलम्पटस्य वाजीविधानं प्रथमं विदध्ये ॥१३॥

तिलमाषविदारीणां शालीनां चूर्णमेव वा ।
पौण्ड्रकेक्षुरसेनाद्रं मर्दितं सैन्धवान्वितम् ॥
वराहमेदसायुक्तं घृतेनोत्कारिकां पचेत् ।
तां भक्षयित्वा पुरुषो गच्छेत्तु प्रमदाशतम् ॥ १४ ॥

से वान्त, विरेचन से विरिक्त, निरुहण से निरूहित तथा अनुवासन से अनुवासित करके चिकित्सा करनी चाहिये ॥१२॥

स्त्री बल से परितोष को लाभ करती है, हीनवीर्य्य पुरुषके साथ कभी भी मित्रता नही होती । अतएव रति-लम्पट पुरुष के बल के लाभ के लिये वाजीकरणोक्त दवाईयां कहेगें ॥ १३ ॥

तिल, माष, विलइयाकन्द और शाली चावल इन सबों का चूर्ण इक्षु का रस में मर्दन तथा सैन्धवनमक से युक्त कर के उस, में शूकर की मेदा मिलाकर घृत में हलुवा के माफिक पाक करना । वह उत्कारिका (हलुवा) भक्षण करने से मनुष्य एक शत स्त्री के साथ सम्भोग कर सकता है ॥ १४ ॥

पिप्पलीलवणोपेतं बस्ताण्डं क्षीरसर्पिषा ।
साधितं भक्षयेद्यस्तु सगच्छेत्प्रमदा-शतम् ॥ १५ ॥
पिप्पलीमाषशालीनां यवगोधूमयोस्तथा ।
चूर्णभागैः समस्तैस्तु घृते पूपलिकां पचेत् ॥
तां भक्षयित्वा पीत्वा तु शर्करामधुरं पय: ।
नरश्चटकवद्गच्छेद्दशवारान्निरन्तरम् ॥ १६ ॥
चूर्णं विदार्य्या सुकृतं स्वरसेनैव भावितम् ।
सर्पिर्मधुयुतं लीढ्वा दशस्त्रीरधिगच्छति ॥ १७ ॥

छागका अण्डकोश, पीपरके चूर्ण और लवण के साथ मिलाय के वह दुग्ध और घृत में पाक करके भक्षण करने से भी मनुष्य शत स्त्रीमें गमन कर सकता है ॥ १५ ॥

पीपर, माष, शालीचावल, यव, तथा गोधूम इन सब द्रव्यों के चूर्ण समान मात्रा में ग्रहण करके उसीसे पीठा-बनाना । इस पीठा को खाकर शर्करा, मधु और दुग्धा-नुपान करनेसे चटक (गौरैया) पक्षी के माफिक निरन्तर तृप्तिके साथ १० बार स्त्री के साथ सम्भोग करसकता है ॥१६॥

विदारिगन्धा का चूर्ण इसी के रस से २१ बार भावित करके घृत और मधु के साथ लेहनपूर्वक दुग्ध पान करने से पुरुष १० स्त्री के साथ सम्भोग कर सकता है ॥ १७ ॥

एवमामलकं चूर्णं स्वरसेनैव भावितम् ।
शर्करामधुसर्पिभिर्युतं लीढ्वा पयः पिवेत् ॥
एतेनाशीतवर्षोऽपि युवेव परिहृष्यति ॥ १८ ॥
विदारि-मूल-कल्कन्तु घृतेन पयसा नरः ।
उदुम्बरं समं पीत्वा वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ १६ ॥
माषाणां पलमेकन्तु संयुक्तं क्षौद्र-सर्पिषा ।
अवलिह्य पयः पीत्वा तेन वाजी भवेन्नरः ॥ २० ॥

इसी प्रकार से आंवला का चूर्ण आंवला के रस में भावना देकर उस में घृत और मधु संयुक्त करके लेहन करने से अशीति वर्षके वृद्ध भी युवा के माफिक हर्ष के साथ स्त्रीके साथ सम्भोग कर सकता है ॥ १८ ॥

पताल कोंहड़ा का कल्क एक पल (८ तोला अथवा ४ तोला) घृत और दुग्ध के साथ गुल्लर का चूर्ण समान मात्रा में पान करने से वृद्ध भी तरुण हो जाते हैं ॥१६॥

माष का कल्क १ पल घृत तथा मधु के साथ पान करने से अश्व के माफिक मैथुन में शक्ति होती है। (मधु और जल अथवा मधु और घृत समपरिमाण से नहीं सेवन करना चाहिये क्योंकि तुल्य भाव होने पर विष के माफिक हो जाता है) ॥ २० ॥

क्षीरपक्कांस्तु गोधूमानात्मगुप्ता-फलैः सह ।
शीतान्-घृत युतान् खादेत् ततः पश्चात्पयः पिवेत् ॥ २१ ॥
स्वयं गुप्तेक्षुरकयोः फलचूर्णं सशर्करम् ।
धारोष्णेन नरः पीत्वा पयसा न क्षयं व्रजेत् ॥ २२ ॥
गृष्टीनां वृद्धवत्सानां माषपर्णभृतां गवाम् ।
यत्क्षीरं तत्प्रशंसन्ति बलकामेषु जन्तुषु ॥ २३ ॥
कर्षं मधुक-चूर्णस्य घृतक्षौद्रं समांशिकम् ।

गोधूम तथा केंवाच का बीज दूध में पाक करके घृतके साथ शीतल अवस्था में सेवन करके दुग्धानुपान करने से बल का लाभ होता है ॥ २१ ॥

केंवाच तथा कैलया का बीज चूर्ण करके चीनी के साथ मिश्रित कर धारोष्ण दुग्धानुपान करने से शुक्रक्षय को प्राप्त नहीं करता ॥ २२ ॥

प्रथम प्रसूता गौ जिसका बच्चा बड़ा हो गया हो, उसी को कतिपय दिन अर्थात् २—३—मास पर्य्यन्त केवल माषकी कोमल पत्तिभक्षण कराकर पुष्ट करना । उस गायका दूध बलकी इच्छा करने वाले मनुष्यों के लिये प्रशस्त जानना ॥ २३ ॥

मुल्हेठी का चूर्ण २ तोला और उसी के बराबर

प्रयुङ्क्ते यः पयश्चानु नित्यगः स ना भवेत् ॥ २४ ॥
आर्द्राणि मत्स्यमांसानि भृष्टाश्चशफरीश्च वा ।
घृतेभृष्टान् रसेछागे रोहितान् फलसाधितान् ।
अनुपीतं रसान् सिद्धानपत्यार्थी प्रयोजयेत् ॥ २५ ॥
तप्ते सर्पिषि यः खादेत् स गच्छेत् स्त्रीषु न क्षयम् ।
अश्विन्यां वटवन्दाकं क्षीरैः पिष्ट्वा महाबलः ॥ २६ ॥
पुष्योद्धृतं पिबेन्मूलं श्वेतार्कस्य प्रयत्नतः ।
सप्तरात्रन्तु गोक्षीरैः वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ २७ ॥

घृत और मधु पान कर के दुग्धानुपान करने से मानव नित्य वेग सम्पन्न होता है ॥ २४ ॥

जो मनुष्य ताजा मांस और मछली तथा गरम घी में भुंजी हुई पोठिआ भोजन करता है वह स्त्री में उपगत होने से क्लान्ति को नहीं प्राप्त कर सकता है ॥ अपत्यार्थी मनुष्य रोहित मत्स्य घि में भुज के फल से साधित छाग मांसके साथ पकाकर उसको पीनेने २५ ॥

वटवन्दाक अर्थात् बर का पेड़ किसी वृक्ष में जम जाय तो उसी को अश्विनी नक्षत्र में लेकर दुग्धके साथ पीसकर खाने से पुरुष महाबली हो जाता है ॥ २६ ॥

पुष्य-नक्षत्र में श्वेतमन्दारका मूल उखाड़ कर गो

पूर्वभाद्रपदाऋक्षे बिम्बीमूलं पिबेद्बुधः ।
अनेन पुरुषो याति महाबलं न संशयः ॥ २८ ॥
बीजं गोक्षुरकस्यैव समं गुञ्जाफलं तथा ।
दुग्धेन पाचनं कृत्वा पीतेन बलवीर्य्यकृत् ॥ २९ ॥
वृद्धशाल्मली मूलस्य रसं शर्करया पिबेत् ।
एतत्प्रयोगात्सप्ताहाज्जायते रेतसोऽम्बुधिः ॥ ३० ॥
विष्णुक्रान्ता शिखी मूलं करे बद्ध्वा तु रमयेत् ।

दुग्धके साथ पीसकर सात रोज सेवन करने से वृद्ध लोग भी युवा के माफिक हो जाते हैं ॥ २७ ॥

पूर्वभाद्रपदा नक्षत्र में बिम्बीफल का मूल संग्रह करके जल के साथ पीसकर खाने से पुरुष महा बलशाली होता है ॥ २८ ॥

गोखरू का बीज तथा गुञ्जाफल (घुंघुची) समपरिमाण से ग्रहण करके दुग्धके साथ पान करना चाहिए । इस प्रकार पान करने से वीर्य्य लाभ होता है ॥ २९ ॥

अतिपुराना सेमल वृक्ष के मूल का रस चीनी के साथ पान करने से सात रोज के बीच में शुक्र समुद्र के समान अत्यधिक हो जाता है ॥ ३० ॥

विष्णुक्रान्ता का मूल तथा चिरचिरा का मूल पट्ट-

पट्टसूत्रेण वै देवि स्थिरवीर्य्यं ध्रुवं भवेत् ॥ ३१ ॥
आर्द्रकस्य च मूलन्तु कृत्तिकायां समुद्धरेत् ।
एवं सुरामध्ये क्षिप्त्वा यदाचारेण गच्छति ।
महाबलो भवेन्नित्यं गजं हन्ति न संशय: ॥ ३२ ॥
जम्बूफलस्यात्मरसे मधुना सह पेषयेत् ।
वराङ्गलेपनादेव वृद्धा कान्तेव गच्छति ॥ ३३ ॥
धातकी सोमराजीञ्च क्षीरेण सह पेषयेत् ।
दुर्वलश्च भवेत्स्थूल: नात्रकार्य्या विचारणा ॥ ३४ ॥
ना ना स्वपिति रात्रीषु निस्तब्धेन च शेफसा ।

सूत से हाथ में बांध कर रमण करने से मनुष्य का शुक्र स्तम्भन होता है ॥ ३१ ॥

कृत्तिकानक्षत्र में आदी के मूल उखाड़ करके मद्य के बीच में छोड़कर उस मूलको भक्षण करने से महाबली होकर हाथी को भी विनाश कर सकता है ॥ ३२ ॥

जामुन के स्वरस में मधु मिलाकर लिङ्ग में लेपदेने से वृद्ध भी युवा के माफिक मैथुन विषय में सामर्थ्य को लाभ कर सकता है ॥ ३३ ॥

धाइ फुल और वाकुची का बीज दुग्ध के साथ पीस कर खाने से पुरुष बलवान् होता है ॥ ३४ ॥

जो मनुष्य कुम्भीर का शुक्र में मुरगा का मांस भूंज

तृप्तः कुक्कुटमांसानां भृष्टानां नक्तचरेतथि ॥ ३५ ॥
तृप्तिं चटक मांसानां ये चानु पिबेत् पयः।
न तस्य लिङ्गशैथिल्यं स्यान्न शुक्रक्षयो निशि ॥ ३६ ॥
अपामार्गं बचा शुण्ठिविडङ्ग शङ्खपुष्पिका।
शतावरी गुडूची च समं चूर्णं हरीतकीम् ॥
घृतेन भक्षयेत्सर्वं नित्यं ग्रन्थसहस्रधृक् ॥ ३७ ॥
अभ्यङ्गोत्सादनस्नानगन्धमाल्यविभूषणैः।

कर तृप्ति के साथ भोजन करता है उसका लिङ्ग ऐसा स्तब्ध होता है कि उस को रात भर निद्रा नहीं आती ॥ ३५ ॥

जो मनुष्य तृप्तिपूर्वक गौरैया पक्षी के मांस को भोजन करता है उस का लिङ्ग कभी भी शिथिल नहीं होता है वह रात में स्त्री संगम के समय में भी शुक्र क्षय को प्राप्त नहीं होता ॥ ३६ ॥

अपामार्ग (चिरचिरा), बच, शुण्ठी, वायविडङ्ग, शतपुष्पी, शतमूली, गुरिच, तथा हरीतकी, इन सब द्रव्यों को समभाग से लेकर एकत्र चूर्ण करना। ब्रह्मचर्य्य को रक्षा कर यह चूर्ण २ तोला परिमाण से घृत के साथ एक मास सेवन करने से प्रतिदिन सहस्र श्लोक को कण्ठस्थ कर सकता है ॥ ३७ ॥

गृहशय्यासनसुखैर्वासोभिरहतैः प्रियैः ॥
विहङ्गानां रुतैरिष्टैः स्त्रीणाञ्चाभरणस्वनैः ।
संवाहनैर्वरस्त्रीणामिष्टानाञ्च वृषायते ॥ ३८ ॥
एते वाजीकरा योगाः प्रीत्यपत्यबलप्रदाः ।
सेव्या विशुद्धोपचितदेहैः कालाद्यपेक्षया ॥ ३९ ॥
अत्यम्लं लवणं क्षारं शाकञ्च कटुतिक्तकम् ।
शुष्कं पर्य्युषितञ्चैव यथेष्टं भोजनं त्यजेत् ॥ ४० ॥

अभ्यङ्ग, (तैलादिमर्दन) उत्सादन (हरिद्रादि से गात्र का संस्कार), स्नान, गन्ध, माला, भूषण, गृह, शय्या, और आसन का सुख, अखण्डित मनोरम वस्त्र, मनके हरण करने वाले पक्षियों का शब्द, युवती स्त्रियों का भूषण-शब्द तथा मनोरमा कामिनी से अङ्गमर्दन, ये समुदाय वाजीकरण उपाय है ॥ ३८ ॥

ये सब वाजीकरण योग समूह प्रीति, अपत्य, और बलप्रद हैं। वमन विरेचनादि पञ्चकर्म्म से विशुद्ध तथा उपचित मनुष्य कालादि को विचार कर उल्लिखित वाजीकरण औषधियों को सेवन करे ॥ ३९ ॥

रसायन तथा वाजी करण औषधियों का सेवन करने वाले मनुष्यों को चाहिये कि अधिक लवण, अत्यम्ल,

आर्तव-शोणित-शुद्धि-साधारण-चिकित्सा ।

विधिमुत्तरवस्त्यन्तं कुर्य्यादार्तव शुद्धये ॥ ४१ ॥

स्त्रीणां स्नेहादि युक्तानां चतसृष्वार्तवार्तिषु ।

कुर्य्यात्कल्कान् पिचूश्चापि पथ्यान्याचमनानि च ॥ ४२ ॥

ग्रन्थीभूते पिबेत् पाठां त्र्यूषणं वृक्षकानिच । ४३ ॥

दुर्गन्धे पूयसंकाशे मज्जतुल्ये तथार्तवे ।

तथा क्षार, शाक, कटुद्रव्य, तिक्त पदार्थ, सूखी हुई चीज, बासी द्रव्य, और यथेच्छा भोजन को परित्याग करे ॥ ४० ॥

आर्तव-शोणित शुद्धि के लिए भी स्नेहन, वमन, विरेचन, निरूहण, अनुवासन और उत्तरवस्ति का प्रयोग करना । ४१ ॥

वात, पित्त, श्लेष्मा तथा शोणित से आर्तव-शोणित प्रदुष्टि के कारण से यथावत् स्नेहादिकों का प्रयोग करके योनी-व्यापद चिकित्सोक्त कल्क, पिचू, पथ्य, तथा योनी-प्रक्षालन जल समूहों का व्यवहार करना ॥ ४२ ॥

आर्तव-शोणित ग्रन्थिलवत् होने से पाठा (विमुका), शोंठ पीपर, मरिच, कोरैया ये सब द्रव्यों का क्वाथ या चूर्णको सेवन करना चाहिये ॥ ४३ ॥

आर्तव-शोणित दुर्गन्ध, पीव के तरह होने पर अथवा मज्जा के माफिक होने के कारण से भद्रश्रिया

पिबेद्रुद्रप्रियक्वाथं चन्दनक्वाथमेव च ॥ ४४ ॥
शुक्रदोषहराणाञ्च यथास्वमवचारणम् ॥
योगानां शुद्धिकरणं शेषास्वप्यार्त्तवार्तिषु ।
अन्नं शालियवं मद्यं हितं मांसञ्चपित्तलम् ॥ ४५ ॥
अथासृग्दररोगस्य निदानं चिकित्सा च ।
आर्त्तवाति प्रसङ्गेन प्रवृत्तमनृतावपि ।
असृग्दरं विजानीयादतोऽन्यद्रक्तलक्षणात् ॥ ४६ ॥

(श्वेत चन्दन) का क्वाथ अथवा रक्त चन्दन का क्वाथ पानार्थ देना चाहिये ॥ ४४ ॥

शुक्र दुष्टिका योग समूह यथा दोष आर्तव-दोष में भी प्रयोग करना और शेषोक्त आर्तवरोग में अर्थात्-वात दुष्ट, कफ-दुष्ट तथा शोणित-दुष्ट आर्तवरोग में शुद्धिकर दवाइयों का व्यवस्था करना ॥ शालि-अन्न, यव, मधु, और पित्तकर मांस पथ्य के लिये रोगी को देना उचित है ॥४५॥

ऋतुकाल में आर्तव–शोणित अधिक मात्रा से निर्गत होने के कारण अथवा दीर्घ कालतक स्राव होने पर किम्वा ऋतु काल को छोड़ के अन्य समय में भी उसके निर्गत होने से अथवा विशुद्ध आर्तवका लक्षणों को विपरीत लक्षणाक्रान्त होने से उसी को असृग्दर (प्रदर) कहते हैं ॥ ४६ ॥

असृग्दरो भवेत्सर्वः साङ्गमर्द्दः सवेदनः ।
तस्यातिवृत्तौ दौर्बल्यं भ्रमोमूर्छास्तमस्तृषा ॥
दाहः प्रलापः पाण्डुत्वं तन्द्रारोगाश्चवातजाः ॥ ४७ ॥
तरुण्याऽहित सेविन्यास्तदल्पोपद्रवं भिषक् ।
रक्तपित्त विधानेन यथावत्समुपाचरेत् ॥ ४८ ॥

अथातिरजोनिवारणोपायाः ।

धात्रीञ्च पथ्याञ्च रसाञ्जनञ्च-
कृत्वा विचूर्णं सजलं निपीतम् ।

हरेक प्रकारके असृग्दर रोग में ही अङ्गपीडा और बेदना के साथ योनी मार्ग से रक्त की प्रवृत्ति होती है ॥ स्राव अधिक होने के कारण दुर्वलता, मूर्छा, अन्धकारसा मालूम होना, पिपासा, दाह, अनर्थक बोलना, पाण्डुवर्णता, तन्द्रा, तथा बातज रोग समूह उत्पन्न होता है । ४७ ॥

प्रदररोगिनी अगर युवती तथा अहितसेविनी हो तो और यदि वह प्रदर रोग भी थोड़ा उपद्रव विशिष्ट होतो रक्तपित्त रोग में जैसा चिकित्सा का विधान किया गया है तदनुसार इलाज करना चाहिये ॥ ४८ ॥

अनन्तर अतिरज निवारण योग समूहका वर्णन करेंगे ॥ आमलकी, हरीतकी, और रसाञ्जन अलग अलग

अत्यन्तरक्तोत्थितमुग्रवेगम्-

निवारयेत्सेतु मिवाम्बुपूरम् ॥ ४६ ॥

शेलुन्त्वचा मिश्रिततण्डुलेन विधायपिष्टं त्रिनियोजनीयम्।
कन्दर्पगेहे मृगलोचनायाः रक्तं विहन्त्याशु हठेन योगः॥५०॥

मूलन्तु शरपुङ्खायाःपेषयेत्तण्डुलोदकैः ।
पाययेत्कर्षमात्रं तदतिरक्तप्रशान्तये ॥ ५१ ॥
अपामार्गस्य मूलन्तु दृढ पूगेन भक्षयेत् ।
रक्तस्रावं निहन्त्याशु सुखी भवति सुन्दरी ॥ ५२ ॥

करके चूर्ण करना । यह बुकनी समपरिमाण जलके साथ पान करे तो सेतुबन्ध से जैसा जल रुक जाता है ऐसा ही स्त्रियों के भी अधिक स्राव बन्द होता है ॥ ४९ ॥

शेलुवृक्ष का (चालता वृक्ष इति गौड़े) बल्कल और अरवा चावल का जल एकत्र पीसकर के औरतों की योनी देश में प्रलेप देने से रक्तस्राव बन्द होता है ॥ ५० ॥

शंखपुष्प का मूल तण्डुलोदक के साथ पीसकरके एक कर्ष (दो तोला) परिमाण से सेवन किया जायतो रक्त की प्रशान्ति होती है ॥ ५१ ॥

चिरचिरा का मूल और सुपारी का फल भक्षण करने

कुशस्य मूलं कदली फलम्वा प्रतापनी वा बदरो फलम्वा ।
गुडूचिका तण्डुल वारिपीता स्त्रीणामनेकं रुधिरं जयेच्च ॥५३॥

चन्दनं क्षीरसंयुक्तं सघृतं पाययेद्भिषक् ।
शर्करा मधुसंयुक्तमस्त्रस्रावविनाशनम् ॥ ५४ ॥

दार्वीरसाञ्जनवृषाब्द-किरात-बिल्व-
भल्लातकैरथकृतोमधुना कषायः ।
पीतोजयत्यतिबलं प्रदरं सशूलं-
पीतं सितारुणविलोहितनीलकृष्णाम् ॥

से शीघ्र ही रक्त स्राव बन्द हो जाता है और रोगिणी सुखी हो जाती है ॥ ५२ ॥

कुश का मूल, केला का फल, गन्धाली मूल, बेरका फल अथवा गुरिच चांवल का जल के साथ सेवन करने से स्त्रियों का रक्तस्राव बन्द होता है ॥ ५३ ॥

रक्तचन्दन, दुग्ध, घृत, चीनी और मधु ये सब बराबर भाग लेकर पीने से रक्त स्राव दूर होता है ॥ ५४ ॥

दारुहरिद्रा, रसौत, अडूसा, नागर मोथा, चिरायता, बेलसुख, और भेलावां ये सब द्रव्य समपरिमाण से दो तोला लेकर काढ़ा बनाना और उस क्वाथ को छानकर इसमें मधु मिलाकर सेवन करने से अतिप्रबल शूल-

अशोकस्य त्वचासिद्धं क्षीरं रक्तहरं पिबेत् ॥ ५५ ॥

वन्ध्या-पूति-प्रजाजन्म-कारणमाह ।

यदा स्त्रियाः शोणितगर्भाशयबीजभागः प्रदोषमापद्यते तदावन्ध्यां जनयति, यदा पुनरस्याः शोणिते गर्भाशयबीजभागावयवः प्रदोषमापद्यते तदा पूतिप्रजां जनयति ॥ ५६ ॥

अथ वन्ध्याया गर्भधारणम् ।

समूलपत्रां सर्पाक्षीं रविवारे समुद्धरेत् ॥

प्रद पीत, श्वेत, लाल, नील और कृष्ण वर्ण युक्त प्रदर रोग प्रशमित होता है ॥ अशोक वृक्ष का छाल से सिद्ध दुग्धका पान करने से रक्तस्राव बन्द हो जाता है ॥५५॥

जिन स्त्रीयोंका रज, गर्भाशय, और बीजभागावयव ही दूषित हो जाता है वह स्त्री वन्ध्या होती है परन्तु स्त्रिओं का रक्त के बीच में गर्भाशय तथा बीज भागावयव दूषित होता है तो उसी को पूतिप्रजा कहते हैं ॥ ५६ ॥

अथ जन्म वन्ध्या चिकित्सा ।

रविवार के दिन मूल और पत्र के साथ सर्पाक्षी शाक को उखाड़ कर एक वर्ण गोदुग्ध के साथ अविवा-

एकवर्णगवां क्षीरैः कन्याहस्तेन पेषयेत् ।
एवं सप्तदिनं कृत्वा वन्ध्या भवति पुत्रिणी ॥ ५७ ॥
पत्रकैकं पलाशस्य गर्भिणी पयसान्वितम् ।
पीत्वा तु लभते पुत्रं रूपवन्तं न संशयः ॥ ५८ ॥
शीततोयेन सम्पिष्टं शरपुङ्खीयमूलकम् ।
कर्षं पीत्वा लभेद्गर्भं पूर्ववत्क्रमयोगतः ॥ ५९ ॥
मुस्ता प्रियङ्गुसौविरं लाक्षा क्षौद्रं समं पिबेत् ।
कर्षं तण्डुलतोयेन बन्ध्या भवति पुत्रिणी ॥ ६० ॥

हिता कन्या से बन्ध्या स्त्री ऋतु काल में ४ तोला वा २ तोला परिमाण से प्रतिदिन सात रोज तक सेवन करने से बन्ध्या स्त्री पुत्रवती होती है ॥ ५७ ॥

पलाश वृक्ष की एक पत्ती गर्भिणी स्त्री का दुध के साथ भक्षण करने से वन्ध्या स्त्री अवश्य ही रूपवान पुत्र को लाभ करती है ॥ ५८ ॥

शरपुङ्खी (शरफोंका) का मूल ठंढा जल से पीस कर २ तोला परिमाण में सेवन करने से वन्ध्या स्त्री रूपवान् पुत्र को प्रसव करती है ॥ ५९ ॥

नागर मोथा, फुल प्रियङ्गु, सौवीर (सुरमा या वैर) लाह और सहद सब २ तोले चावल के जल के साथ सेवन करने से बन्ध्या स्त्री पुत्रवती होती है ॥ ६० ॥

सपिप्पली केशरशृङ्गवेरं क्षुद्रोषणां गव्यघृतेन पीतम् ।
बन्ध्याऽपि पुत्रं लभते हठेन योगोत्तमोऽयं मुनिभिः प्रदिष्टः ॥६१॥
पुष्यार्कयोगादुद्धृत लक्ष्मणाया: मूलं तथा वज्रतराश्च पिष्ट्वा।
अप्येकवर्णापयसा निपीतं स्त्रियः स्मृतं पुत्रकरं मुनीन्द्रैः॥ ६२॥

काकोल्यौ लक्ष्मणामूलं तथा षष्टीक-तण्डुलम् ।
नार्य्येकवर्णापयसा पीत्वा गर्भवती कृता ॥ ६३ ॥

अश्विन्यां बोधि वृक्षस्य वन्दाकं ग्राहयेद्बुधः ।
गोक्षीरैः पानमात्रेण वंध्या पुत्रवती भवेत् ॥ ६४ ॥

पीपर, नागकेशर, आदि, कन्टकारी (भटकटैया) और मिर्च इन सबों को समपरिमाण से गो घृत के साथ सेवन करने से वन्ध्या स्त्री पुत्रनी होती है ॥ ६१ ॥

पुष्य नक्षत्र से युक्त रविवार में श्वेत वरियारा मूल उखाड़ कर एक वर्णा गौके दुग्ध से पीसकर सेवन करने से वंध्या स्त्री पुत्रवती होती है ॥ ६२ ॥

काकोली, क्षीरकाकोली, वरियारा के मूल और साठीधान का चावल एक वर्णा गौके दूधके साथ सेवन करने से स्त्री गर्भवती होती है ॥ ६३ ॥

अश्विनी नक्षत्र में पीपर वृक्ष में जमा हुआ वन्ताक को आहरण कर गोदुग्ध के साथ पीसकर सेवन करने से वंध्या नारी पुत्रवती होती है ॥ ६३ ॥

कदम्बमूलं श्वेतञ्च बृहतीमूलमेव च ।
एतानि समभागानि अजाक्षीरेण पेषयेत् ।
त्रिरात्रं पञ्चरात्रम्वा पिवेदेतन्महौषधम् ।
अस्मिन्निपीयमाने तु गर्भो भवति निश्चितम् ॥ ६५ ॥
गोक्षुरस्य तु बीजं हि पिवेन्निर्गुण्डिका रसैः ।
त्रिरात्रं सप्तरात्रम्वा बन्ध्या भवति पुत्रिणी ॥ ६६ ॥

अथ काकबन्धाया लक्षणं चिकित्सा च ।

पूर्वं पुत्रवती भूत्वा पश्चान्नो सूयते यदि ।
काकबन्ध्या च विज्ञेया चिकित्साऽस्याश्चकथ्यते ॥ ६७ ॥

श्वेतकदम्ब वृक्ष की पत्ती तथा वृहती (भटकटैया) का मूल समपरिमाण लेकर बकरी के दुग्ध के साथ पीसना । यह महोषध ३ रोज तक सेवन करने से जरूर ही बन्ध्यास्त्री पुत्रवती होती है ॥ ६५ ॥

ऋतुकाल में गोखरू का बीज शम्भालु का रस में पीसकर ३ रोज अथवा ७ रोज तक सेवन करने से बन्ध्या-स्त्री पुत्रवती होती है ॥ ६६ ॥

अथ काकबन्ध्या का लक्षण तथा चिकित्सा ।

जो स्त्री केवल एकबार एक पुत्र को प्रसव करके फिर दुसरे मरतबे प्रसव नहीं करती है उसी को काकबन्ध्या कहते हैं ॥ ६७ ॥

विष्णुक्रान्तां समूलान्तु पिष्ट्वा दुग्धैस्तु माहिषैः ।
महिषी-नवनीतेन ऋतुकाले च भक्षयेत् ॥
एवं सप्तदिनं कुर्य्यात् पथ्यमुक्तञ्च पूर्ववत् ।
गर्भं स लभते नारी काकबन्ध्या सुशोभनम् ॥ ६८ ॥
अश्वगन्धीयमूलन्तु ग्राहयेत्पुष्य-भास्करे ।
योजयेन्महिषीक्षीरैः पलार्द्धं भक्षयेत् सदा ।
सप्ताहाल्लभते गर्भं काकबन्ध्या न संशयः ॥ ६९ ॥

अथ मृतवत्सा-लक्षणं चिकित्सा च ।

गर्भः संजातमात्रेण पक्षान्मासाच्च वत्सरात् ।

अपराजिता का मूल भैंस के दूध से पीसकर भैंस के माखन के साथ सेवन करना । पूर्वोक्त विधानों से पथ्य और नियम का पालन करते हुए इस औषध का सेवन करने से स्त्री सुन्दर पुत्र को लाभ करती है ॥ ६८ ॥

पुष्य-नक्षत्र से युक्त रविवार में अश्वगन्ध का मूल ग्रहण कर भैंस का दुग्ध के साथ पेषण करना । यह औषध एक सप्ताहतक सेवन करने से काकबन्ध्या स्त्री जल्दही गर्भग्रहण करने में समर्थ होती है ॥ ६९ ॥

अथ मृतवत्सा का लक्षण और चिकित्सा ।

जिसका सन्तान होने के बाद एकपक्ष, एकमास,

म्रियते द्वित्रिवर्षाद्वा यस्याः सा मृतवत्सिका ॥ १० ॥
तस्याः प्रयोगं कर्तव्यं यथा शङ्करभाषितम् ॥ ११ ॥
प्राङ्मुखी कृत्तिकाऋक्षे बन्ध्या कर्कोटकं हरेत्।
तत्कन्दं पेषयेत्तोयैः कर्षमात्रं सदा पिबेत्।
ऋतुकाले तु सप्ताहं दीर्घजीवि-सुतं लभेत् ॥ १२ ॥
या बीजपूर-द्रुम-मूलमेकं क्षीरेणसिद्धं हविषाभिमिश्रम्।
ऋतौ निपीय स्वपतिं प्रयाति दीर्घायुषं सा तनयं प्रसूते ॥१३॥

एकवर्ष, २ वर्ष किम्वा ३ वर्ष के बीच में उक्त सन्तान मर जाता हो तो उस स्त्री को मृतवत्सा कहते हैं ॥ १० ॥

उस मृतवत्सा दोष की शान्ति के लिए महादेवजी के वाक्यानुसार प्रक्रिया करना उचित है ॥ ११ ॥

मृतवत्सा नारी कृत्तिका नक्षत्र में पूर्वमुखी होकर बेल वृक्ष का मूल संग्रहकरे। वह मूल पेषण कर २ तोला परिमाण से ऋतुकाल में सात रोज तक भक्षण करे तो दीर्घजीवी पुत्र को लाभ करती है ॥ १२ ॥

जो स्त्री बीजपूरक (बिजौरा) वृक्ष का मूल संग्रह करके दुग्ध के साथ पाककर घृत के साथ सेवन करे तो दीर्घायु सन्तान को प्रसव कर सकती है ॥ १३ ॥

बङ्गदेशान्तर्गत वरिशाल मण्डलस्थित खलिसाकोटा-ग्रामनिवासि-वैद्याचार्य्य कविराज श्री प्रसन्नकुमार कविरत्ना-त्मज-वाराणसी—हिन्दूविश्वविद्यालयायुर्वेदाध्यापक-कवि-राज श्रीनिशिकान्त वैद्यशास्त्रि-सङ्कलित-शरीरविज्ञाने शुक्रा-र्त्तवविज्ञानं नाम तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ गर्भविज्ञानीयाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

ऋतौ प्रथम-दिवसात्प्रभृति ब्रह्मचारिणी दिवास्वप्ना-ञ्जनाश्रुपात-स्नानानुलेपनाभ्यङ्ग-नखच्छेदन-प्रधावन-हसन-कथनातिशब्दश्रवणावलेखनानिलायासान् परिहरेत् ॥ १ ॥

विशुद्धार्त्तवा स्त्री प्रथम दिवस से ब्रह्मचारिणी होकर अर्थात् मैथुन को परित्यागकर के दिन में निद्रा, नेत्र में अञ्जनलेप, अश्रुपात, स्नान, चन्दनादि सुगन्धिद्रव्यानु-लेपन, हरिद्रादि अभ्यङ्ग, नखच्छेद, प्रधावन, अतिहास्य, अतिकथन, अतिशब्द का श्रवण, अवलेखन, केशसंस्कार (अथवा नख से मृत्तिका को चिह्नित करना), प्रवात, तथा परिश्रम का परिहार करना चाहिए ॥ १ ॥

अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा लोभाद्वा दैवतश्च वा।
सा चेत्कुर्य्यान्निषिद्धानि गर्भो दोषांस्तदाप्नुयात् ॥ २॥

दिवास्वपन्त्याः स्वापशीलः, अञ्जनादन्धः, रोदनाद्विकृतदृष्टिः, स्नानानुलेपनाद्दुःखशीलः, हसनाच्छ्यावदन्तौष्ठतालुजिह्वः, प्रलापी चातिकथनात्, अतिशब्दश्रवणाद्ब-

---

अज्ञानता से ही हो वा प्रमाद से हो अथवा दैव कारण से ही हो। रजःस्वला स्त्री अगर अश्रुपातादि निषिद्ध कर्म्म को अनुष्ठान करे तो गर्भ उन दोषों को लाभ करता है ॥ २॥

ऋतुकाल में दिन में सोजाने से स्त्री का सन्तान निद्रालु होता है, नेत्र में अञ्जन लगाने से सन्तान अन्ध-हो जाता है, रोदन से विकृत दृष्टि, स्नान और अनुलेपन से दुःखशील, तैलाभ्यङ्ग से कुष्ठ रोगी, नखच्छेदन करने से कुनखी, प्रधावन से चञ्चल, हास्य करने से सन्तान का दांत, ओंठ, तालु और जिह्वा काला सा हो जाता है, अधिक बोलने से सन्तान असम्बन्धभाषी, अतिशब्द के श्रवण से वधिर, अवलेखन करने से सन्तान खन्दलुप्तरोग से आक्रान्त होता है। प्रवात तथा परिश्रम से सन्तान

धिरः, अवलेखनात्खलतिः, मारुतायासेवनादुन्मत्तो गर्भो भवतीत्येवमेतान् परिहरेत् ॥ ३ ॥

दर्भसंस्तरशायिनीं करतलशरावपर्णाण्यन्यतम-भोजिनीं हविष्यं त्र्यहञ्च भर्तुः संरक्षेत् । ततः शुद्धस्नातां चतुर्थेऽहन्यहत-वाससमलङ्कृतां कृतमङ्गलस्वस्तिवाचनां भर्त्तारं दर्शयेत् ॥ ४ ॥

पूर्वं पश्येदृतुस्नाता यादृशं नरमङ्गना ।
तादृशं जनयेत्पुत्रं भर्त्तारं दर्शयेदतः ॥ ५ ॥

उन्मत्त हो जाता है अतएव इन सबों को सब तरह से छोड़ना चाहिए ॥ ३ ॥

ऋतुमती स्त्री प्रथम ३ रोज तक कुश का आसन पर शयन करे, करतल, शराब अथवा कदली पत्र में हविष्यान्न को भोजन करे । तदनन्तर चतुर्थदिवस में स्नान करके शुद्ध होने के बाद अविच्छिन्न वस्त्र और अलङ्कार को धारण करके मङ्गल और स्वस्ति वाचन करने के बाद स्वामी का दर्शन करना उचित है ॥ ४ ॥

ऋतुस्नान करके स्त्री जैसे पुरुष को पहिले देखेगी वैसा ही सन्तान होगा इसलिए स्त्री को चाहिए कि पहिले अपने पति को देखे ॥ ५ ॥

तत्र प्रथमदिवसे ऋतुमत्यां मैथुनगमनमनायुष्यं पुंसाम्भवति । यश्चतत्राधीयते गर्भः स प्रसवमानो विमुच्यते । द्वितीयेऽप्येवं सूतिकागृहे वा । तृतीयेऽप्येवमसम्पूर्णाङ्गोऽल्पाऽयुर्वा भवति । चतुर्थे तु सम्पूर्णाङ्गो दीर्घाऽयुश्च भवति । तस्मान्नियमवतीं चिराचं परिहरेत् ॥ ६ ॥

चतुर्थदिवसेऽपराह्णे पुमान् मासं ब्रह्मचारी सर्पिः-

ऋतु के प्रथम दिवस में स्त्रीप्रसङ्ग करने से पुरुष हीन आयु को प्राप्त करता है और इसी से जो गर्भ उत्पन्न होता है वह भी पृथिवी पर आकर मर जाता है । द्वितीय दिवस में गमन करने से भी उक्त फलको लाभ होता है अथवा सन्तान सूतिका गृह में अर्थात १ रोज के बीच में मर जाता है । तृतीय दिवस में भी गमन करने से उस फल को प्राप्त करता है अथवा सन्तान असम्पूर्णाङ्ग वा अल्पायु को लाभ करता है । चतुर्थ दिवस में गमन करने से सन्तान सम्पूर्णाङ्ग और दीर्घजीवी होता है, इस लिए ऋतु से ३ रोज तक स्त्री गमन निषिद्ध है, और स्त्री को भी नियमवती होकर रहना चाहिए ॥ ६ ॥

पुत्रार्थी होकर पुरुष एकमास तक ब्रह्मचर्य्यको रक्षा कर के चतुर्थ दिन के अपराह्ण में घृत से स्निग्ध होकर

स्निग्धः सर्पिःक्षीराभ्यां शाल्योदनं भुक्त्वा मासं ब्रह्मचारिणीं तैलस्निग्धां तैलमाषोत्तराहारां नारीमुपेयाद्रात्रौ सामादिभिरभिविश्वास्य विकल्प्यैवं चतुर्थ्यां षष्ठ्यामष्टम्यां दशम्यां द्वादश्याञ्चोपेयादिति पुत्रकामः ॥ ७ ॥

यथूत्तरोत्तरं विद्यादायुरारोग्यमेव च ।
प्रजासौभाग्यमैश्वर्य्यं बलञ्च दिवसेषु वै ॥ ८ ॥

अतःपरं पञ्चम्यां सप्तम्यां नवम्यामेकादश्याञ्च स्त्रीकामः, त्रयोदशीप्रभृतयो निन्द्याः ॥ ९ ॥

घृत और दुग्ध के साथ शाली चावलका भात खाकर स्त्री गमन करे। स्त्री भी एक मास तक ब्रह्मचारिणी रहकर चतुर्थ दिवस में तैल से स्निग्ध होकर और माषप्रधान आहार करके स्वामी सहवास करे। पति वैदिक मन्त्र से अथवा मधुर भाषणादि से सर्व प्रकार स्त्री को विश्वस्त करके पुत्रकी इच्छा कर चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, दशम अथवा द्वादश दिवस की रात्री में स्त्री सम्भोग करे ॥ ७ ॥

उपरोक्त दिवसों में स्त्री सम्भोग करने से यथाक्रम आयु, आरोग्य, सन्तान का सौभाग्य, ऐश्वर्य्य और बलका लाभ होता है ॥ ८ ॥

कन्या सन्तान लाभ करने की इच्छा हो तो पञ्चम,

नियतं दिवसेऽतीते सङ्कुचत्यम्बुजं यथा ।
ऋतौ व्यतीते नार्य्यास्तु योनिः सङ्क्रीयते तथा ॥ १० ॥
मासेनोपचितं काले धमनीभ्यां तदार्त्तवम् ।
ईषत्कृष्णं विगन्धञ्च वायुर्योनिमुखं नयेत् ॥ ११ ॥
तद्वर्षाद्द्वादशात्काले वर्तमानमसृक् पुनः ।
जरा-पक्क-शरीराणां याति पञ्चाशतः क्षयम् ॥ १२ ॥

सप्तम, नवम, एकादश दिवस की रात्री में स्त्री विलासकरे। त्रयोदश प्रभृति दिनों में स्त्री सम्भोग निन्दनीय है॥ ९ ॥

दिवस बीत जाने पर अर्थात रात्री में कमल जैसा सर्वदा सङ्कुचित होता है, वैसाही ऋतुकाल बीत जाने पर स्त्री की योनि (गर्भाशय) भी सम्वृत अर्थात संकुचित होती है ॥ १० ॥

ऋतुशोणित एकमास में उपचित होने से ऋतुकाल में वायु उसको धमनी-मार्गसे योनिमुखमें लाती है वह ऋतु-शोणित गन्धहीन और देखने में कुछ काला होता है ॥ ११ ॥

स्त्रियों को बारह वर्ष के बाद वह ऋतु-शोणित हरेक मास में निकलता है और शरीर जरापक्क होने से पचास वर्ष के बाद वह आर्तव-शोणित क्षय को प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

युग्मेषु तु पुमान् प्रोक्तो दिवसेष्वयाऽबला ।
पुष्पकाले शुचिस्तस्मादपत्यार्थी स्त्रियं व्रजेत् ॥ १३ ॥

प्रधानभूता मदनातपत्रे समीरणा नाम विशेष-नाडी ।
तस्या मुखे यत्पतितन्तु वीर्य्यं तन्निष्फलं स्यादिति चन्द्रमौलि: १४

या चापरा चान्द्रमसी च नाड़ी कन्दर्पगेहे भवति प्रधाना ।
सा सुन्दरी योषितमेव सूते साध्या भवेदल्परतोत्सवेषु ॥१५॥
गौरीति नाड़ी यदुपस्थगर्भे प्रधानभूता भवति स्वभावात् ।

ऋतुमती स्त्री में युग्मदिवसों में उपगत होने से पुत्र और अयुग्मदिवसों में उपगत होने से कन्या होती है। अतएव अपत्यार्थी पुरुष शुद्ध होकर स्त्री गमन करे ॥ १३॥

चन्द्रमौलिका मत यह है कि भग में समीरणानाम्नी प्रधान भूता जो नाड़ी है उसी के मुख में जो वीर्य्य गिरता है वह निष्फल हो जाता है ॥ १४ ॥

कन्दर्पगेहे (भगमध्ये) चान्द्रमसी नाम्नी जो प्रधान भूतनाड़ी है वह अल्परति क्रिया से ही साध्य होता है, और वह नारी में वीर्य्यपतित होने के कारण से कन्या सन्तान ही उत्पन्न होती है ॥ १५ ॥

भग में गौरीनाम्नी जो प्रधानभूत:नाड़ी है उस में

पुत्रं प्रसूते बहुधाङ्गना सा कष्टोपभोग्या सुरतोपविष्टा ॥ १६ ॥

तन्त्रान्तरे च-स्नानात्प्रभृति युग्मेष्वहःसु सम्बसेतां पुत्रकामौ, अयुग्मेषु दुहितृकामौ च ॥ १७ ॥

नच न्युब्जां पार्श्वगतां वा संसेवेत, न्युब्जाया वातो बलवान् योनिं पीडयति, पार्श्वगतायाः दक्षिणे पार्श्वे श्लेष्मा संच्युतः पिदधाति गर्भाशयं, वामे तदस्याः पार्श्वे पित्तं पीडितं विदधातिरक्तशुक्र, तस्मादुत्ताना सती बीजं गृह्णीयात् । तस्या हि यथास्थानमवतिष्ठन्ति दोषाः ।

वीर्य्य पतित हो जाने से स्वभावतः पुत्र सन्तान ही उत्पन्न होता है । परन्तु वह अल्प रतिक्रिया से साध्य नहीं होता है ॥ १६ ॥

शास्त्रान्तर में उक्त है कि पुत्रकामी युग्म दिन में और कन्याकामी अयुग्म दिन में मैथुन करे ॥ १७ ॥

झुकी हुई और करवट सोई हुई स्त्री के साथ मैथुन करने से वायु वर्द्धितहोकर गर्भाशय में बीज प्रवेश का प्रतिबन्धक होता है, स्त्री को दक्षिण करवट सोने पर रमण करे तो अपने स्थान से च्युत हुआ कफ गर्भाशय को आच्छादन करता है । वाम पार्श्व से सोई हुई स्त्री के साथ मैथुन करने से पित्त कुपित हो कर रक्त और शुक्र को

पर्य्याप्ते चैनां शीतोदकेन परिषिञ्चेत् ॥ १८ ॥

तत्रात्यशीता क्षुधिता पिपासिता भीता विमना शोकार्त्ता क्रुद्धाऽन्यञ्च पुमांसं समिच्छन्ती मैथुने चातिकामा वा स्त्री न गर्भं धत्ते विगुणां वा प्रजां जनयति । अतिबालामतिवृद्धां दीर्घरोगिणीमन्येन वा विकारेणोपसृष्टां वर्जयेत् । पुरुषेऽप्येवमेव दोषाः, अतः सर्वदोषवर्जितौ स्त्रीपुरुषौ

निरोध करता है अतएव उत्तान होकर स्त्री वीर्य्य को ग्रहण करे । उससे वातादि दोष यथा स्थान में अवस्थान करता है । सुरतक्रिया करने के बाद श्रम को दूर करने के लिए शीतल जल से हस्तमुखादि को धौत करे ॥ १८ ॥

सहवास के अयोग्या स्त्री ।

अत्यन्तभुक्ता, क्षुधार्त्ता, पिपासिता, भीता, चञ्चला, तथा अतिकामातुरा स्त्री के साथ रमण नहीं करना । क्योंकि उस हालत में मैथुन करने से गर्भ धारण नहीं होता अथवा गर्भ धारण करने में भी विकृत सन्तान उत्पन्न होता है । अतिबाला, वृद्धा, चिररोगिणी, अथवा अन्यरोगाक्रान्ता स्त्री के साथ मैथुन नहीं करना चाहिए । पुरुष को अति भोजनादि दोष रहने परभी स्त्री सहवास करना उचित नहीं है । अतएव एवम्विध दोषपरिशून्य होकर स्त्री और पुरुष सुरतोत्सव में प्रवृत्त होवें । स्त्री

संसृज्येताम् । सञ्जात-हर्षौ मैथुने चानुकूलाविष्ट-गन्धं सास्तीर्णं सुखं शयनमुपकल्प्य मनोज्ञं हितमशनमशित्वा दक्षिणपादेन पुमान्, वामपादेन स्त्री आरोहेदिति ॥ १६ ॥

बाला तु प्राणदा प्रोक्ता युवती प्राणधारिणी ।
प्रौढ़ा करोति वृद्धत्वं वृद्धा मरणमादिशेत् ॥
बालेति गीयते नारी यावत् षोड़शवत्सरं ।
तस्मात् परं तु तरुणी यावद्द्वात्रिंशतं भवेत् ॥
ततः उर्द्धं भवेत् प्रौढ़ा यावत् पञ्चाशतं पुनः ।
वृद्धा ततः परं ज्ञेया सुरतोत्सववर्जिता ॥
निदाघशरदोर्ब्बाला प्रौढावर्षावसन्तयोः ।
हेमन्तेशिशिरेयोग्या न वृद्धा क्वापिशस्यते ॥
त्रिभिस्त्रिभिरहोभिश्च सेवेत प्रमदां नरः ।
सर्व्वेष्वृतुषु ग्रीष्मेषु पक्षान्मासाद्व्रजेद्बुधः ॥ २० ॥

पुरुष उभय को हितकर आहार करना उचित है । और दोनों को ही मैथुन विषय में अभिलाष होने से सद्गन्ध और उत्तम आस्तरणयुक्त शय्यापर पुरुष दक्षिण पैर से और स्त्री वाम पैर से आरोहण करे ॥ १६ ॥

कामशास्त्र में बालास्त्री को प्राणदा और युवती को प्राणधारिणी कहागया है । प्रौढा स्त्री में उपगत होने से

ऋतुस्तु द्वादशरात्रं भवति दृष्टार्त्तवा । अदृष्टार्तवाऽप्य-स्तीत्येके भाषन्ते ॥ २१ ॥

अदृष्टार्त्तवा लक्षणम् ।

पीनप्रसन्नवदनां प्रक्लिन्नात्ममुखद्विजाम् ।
नरकामां प्रियकथां स्रस्तकुक्ष्यक्षिमूर्द्धजाम् ॥
स्फुरद्भुजकुचश्रोणीनाभ्यूरुजघनस्फिचम् ।
हर्षौत्सुक्य-परास्चापि विद्यादृतुमतीमिति ॥ २२ ॥

पुरुष वृद्ध हो जाता है तथा वृद्ध स्त्री को सेवन से मृत्यु होती है ॥ २० ॥

बारह रात तक ऋतुकाल जानना उक्त बारह रोज तक ऋतु देख पड़ता है । अदृष्टार्तवा स्त्री भी होती है अर्थात ऐसी स्त्री को ऋतु दर्शन नहीं होतो है ॥ २१ ॥

अदृष्टार्त्तवा स्त्री के लक्षण ।

अदृष्टार्त्तवा ऋतुमती स्त्री का मुख भारी और प्रसन्न होता है । शरीर, मुख और दन्तवेष्ट क्लेदयुक्त होता है । पुरुषसंसर्ग की इच्छा होती है । स्त्री प्रिय बोलती है । उस स्त्री की कुक्षी, नेत्र और केश ढीलासा हो जाता है । हस्तद्वय, चूतर, नाभी, उरु, जङ्घा, कुल्हादेश स्फुरित

तत्र सद्योगृहीतगर्भाया: लिङ्गानि।

श्रमो ग्लानि: पिपासा सक्थिसदनं शुक्रशोणितयो-रवद्ध: स्फुरणञ्चयोने:॥ २३॥

गृहीतगर्भाया उत्तरकाल-लिङ्गानि।

स्तनयो: कृष्णमुखता रोमराज्युद्गमस्तथा।
अक्षिपक्ष्माणि चाप्यस्या: सम्मिल्यन्ते विशेषत:॥
अकामत: छर्दयति गन्धादुद्विजते शुभात्।
प्रसेक: सदनञ्चापि गर्भिण्या लिङ्गमुच्यते॥ २४॥

अर्थात स्पन्दित होता है और वह स्त्री सुरतक्रिया में अत्यन्त इच्छा करती है। ये सब लक्षण प्रगट होने से समझना चाहिये कि वह अदृष्टार्त्तवास्त्री ऋतुमती हुई है॥२२॥

मैथुन के बाद भ्रान्ति, ग्लानि, पिपासा, उरुद्वय का अवसाद, शुक्र और शोणित का अवरोध, और योनि का फरकना ये सब लक्षण प्रगट होने पर समझना चाहिये कि स्त्री ऋतुमती हुई है॥ २३॥

गर्भधारण के बाद स्तनद्वय का अग्रभाग (चूचुक) काला होता है नाभी देशतक रोमराजी का उद्भव होता है, विशेष करके नेत्र का पलक सम्मीलित हो जाता है सहसा वमन, शुभ गन्धघ्राण में विरक्ति भाव, मुख से

तदाप्रभृत्येव व्यायामं व्यवायमपतर्पणमतिकर्षणं दिवास्वपनं रात्रि-जागरणं शोकं यानावरोहणं भयमुत्कटाशनञ्चैकान्ततः स्नेहादिक्रियां शोणित-मोक्षणञ्चाकाले वेगविधारणञ्च न सेवेत ॥ २५ ॥

यथा हि बीजमनुपतप्तमुप्तं स्वां स्वां प्रकृतिमनुविधीयते व्रीहिर्वा व्रीहित्वं यवो वा यवत्वं तथा स्त्रीपुरुषावपि यथोक्तं हेतुविभागमनुविधीयेते ॥ २६ ॥

लार गिरना और थक जाना ये सब लक्षण प्रगट होता है ॥ २४ ॥

गर्भोत्पत्ति के बाद गर्भिणी शारीरिक परिश्रम, मैथुन, उपवास, अतिकर्षन, दिनमें सोना, रात में जागना, शोक, अश्वादियान में गमन करना, भय, टेढ़ा होकर बैठना, अतिमात्रा से तथा अकाल में स्नेहादि क्रिया और रक्तमोक्षण करना, तथा मलमूत्रादि का वेगधारण प्रभृति का परित्याग करे ॥ २५ ॥

शस्यादिकों का अविकृत बीज भूमी में यथा नियम पूर्वक बोने से जैसा स्वाभाविक धर्म्मानुसार धान्य से धान्य, यव से यव की उत्पत्ति होती है ऐसा ही विशुद्ध शुक्र और शोणित का सम्यक् योग सङ्घटित होने पर प्रकृति के नियमानुसार सन्तान उत्पन्न होता है ॥ २६ ॥

रक्तेन कन्यामधिकेन पुत्रं शुक्रेण तेन द्विविधीकृतेन ॥ २७ ॥

बीजेन कन्याञ्च सुतञ्च सूते यथास्वबीजान्यतराधिकेन ॥२८॥

शुक्राधिकं द्वैधमुपैति बीजं यस्याः सुतौ सा सहितौ प्रसूते।

रक्ताधिकं वा यदि भेदमेति द्विधा सुते सा सहिते प्रसूते ॥ २९॥

भिनत्ति यावद्बहुधा प्रपन्नः शुक्रार्त्तवं वायुरतिप्रवृद्धः।

तावन्त्यपत्यानि यथाविभागं कर्म्मात्मकान्यस्ववशात्प्रसूते ॥३०॥

जरायुकोश में निषिक्त बीज (शुक्र और आर्त्तव) शुक्राधिक्य होने से पुत्र और वह बीज में आर्त्तव-शोणित अधिक होने पर कन्या उत्पन्न होती है। २७ ॥

जरायुकोषस्थ बीज अर्थात् शुक्र और आर्त्तव दो भाग में विभक्त होने के कारण से अगर एक भाग में शुक्राधिक दूसरे भाग में रक्ताधिक हो तो गर्भिणी पुत्र और कन्या दोनों को एक ही वार प्रसव करती है ॥२८॥

जिनका गर्भाशयस्थ शुक्राधिक बीज दो भाग में विभक्त हो जाता है वह स्त्री यमज पुत्र को प्रसव करती है। एतद्भिन्न रक्ताधिक बीज दो भाग में विभक्त होनेपर यमज कन्या उत्पन्न होती है ॥ २९ ॥

अगर प्रकुपित वायु से जरायु-कोषस्थ बीज बहु अंश में विभक्त होजाता है तो जितने अंश में वह बीज विभक्त

कर्मात्मकत्वाद्विषमांशभेदात् शुक्रासृजोर्वृद्धिमुपैति कुक्षौ ।
एकोऽधिको न्यूनतरो द्वितीय एवं यमेऽप्यधिको विशेष: ॥३१॥
बीजात् समांशादुपतप्तबीजात् स्त्री पुंसलिङ्गी भवति द्विरेता: ॥३२॥

भूतैश्चतुर्भि: सहित: सुसूक्ष्मै:
मनोजवो देहमुपैति देहात् ।

होता गर्भिणी अपने कर्म फल से उतने ही सन्तान प्रसव करती है ॥ ३० ॥

जरायुकोषस्थ बीज वायु से असमानांश में विभक्त होने के कारण यमज सन्तान का एकपुष्ट दूसरा कृश होता है ॥ ३१ ॥

गर्भाशयस्थ बीज—शुक्र और शोणित दोनों ही तुल्य परिमाण हों तो पुंचिह्न और स्त्री चिह्नविशिष्ट नपुंसक का जन्म होता है एवं वह सन्तान द्विरेता (अर्थात् स्त्री और पुरुषजनक रेत:विशिष्ट) होता है । पक्षान्तर में स्त्री-पुरुष का लिङ्गविशिष्ट अर्थात् स्त्रीचिह्न (योनि) और पुंचिह्न (उपस्थविशिष्ट) होता है परन्तु पयोधरादि तथा शुक्र उत्पन्न नहीं होता है ॥ ३२ ॥

आकाश का निष्क्रियता हेतु आकाशभूत को छोड़कर

कर्मात्मकत्वात् न तु तस्य दृश्यं
दिव्यं विना दर्शनमस्तिरूपम् ॥ ३३ ॥
आहारमाप्नोति यदा न गर्भः शोषं समाप्नोति परिस्रुतिं वा।
तं स्त्री प्रसूते सुचिरेण गर्भं पुष्टो यदा वर्षगणैरपि स्यात् ॥३४॥
पित्रोरत्यल्प-बीजत्वादासेक्यः पुरुषो भवेत्।
स शुक्रं प्राश्य लभते ध्वजोच्छ्रायमसंशयम् ॥ ३५ ॥

अतिसूक्ष्म तम चतुर्विध भूत वायु, अग्नि, जल और क्षिति के साथ मनोजव कर्माधीन मन के गति अनुसार एक देह से अन्य देह में अर्थात् गर्भ-शरीर में प्रवेश करता है, वह आत्मा अतिसूक्ष्म होने के कारण चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं होता है किन्तु मुनिगण दिव्यचक्षु से आत्मा को देख सकते हैं ॥ ३३ ॥

अगर गर्भिणी उपयुक्तरूप में आहारादि को प्राप्त न करे अथवा गर्भिणी का कोई प्रकार अधिक रक्तस्राव हो तो उभयविध कारणों से गर्भ यथासमय में परिपुष्ट नहीं होता है इसी लिये दीर्घकाल में गर्भ का पोषण होने से गर्भिणी विलम्ब में प्रसव करती है । ३४ ॥

आसेक्य पुरुष के लक्षण।

माता-पिता के बीज अल्पत्व होने से आसेक्य

यः पूति-योनौ जायेत स सौगन्धिकसंज्ञितः ।
स योनिशेफसोर्गन्धमाघ्राय लभते बलम् ॥ ३६ ॥
स्वे गुदेऽब्रह्मचर्याद् यः स्त्रीषु पुंवत् प्रवर्तते ।
कुम्भीकः स च विज्ञेयः ईर्ष्यकं शृणु चापरम् ॥ ३७ ॥
दृष्ट्वा व्यवायमन्येषां व्यवाये यः प्रवर्त्तते ।
ईर्ष्यकः स च विज्ञेयः षण्डकं शृणु चापरम् ॥ ३८ ॥

सन्तान उत्पन्न होता है। आसेक्य का दूसरा नाम मुख-योनि है। शुक्र को भक्षण न करने से आसेक्य का लिङ्गो-त्थान नहीं होता है। दूसरों से अपने मुंह में मैथुन कराके वह शुक्र को पीजाने से तब उसको लिङ्ग उत्थित होता है। आसेक्य पुरुष एक प्रकार का क्लीब है ॥ ३५ ॥

जो सन्तान पूति-योनि में जन्म लेता है उसको सौगन्धिक कहते हैं ॥ ३६ ॥

जो पुरुष अपने पायु में दूसरे पुरुष से मैथुन कराके अर्थात् पुरुष की तरह स्त्री में उपगत होता है उसको कुम्भीक कहते हैं। इसका दूसरा नाम गुदयोनि। ये भी एक प्रकार के क्लीब होते हैं ॥ ३७ ॥

जो मनुष्य दूसरे को मैथुन में आसक्त देखकर मैथुन (संगम) में प्रवृत्त होता है उसको ईर्ष्यक जानना। इसका दूसरा नाम दृग्योनि है ॥ ३८ ॥

यो भार्यायामृतौ मोहादङ्गनेव प्रवर्त्तते ।
ततः स्त्रीचेष्टिताकारो जायेत षण्डसंज्ञितः ॥ ३९ ॥
ऋतौ पुरुषवद्वापि प्रवर्त्तेताङ्गना यदि ।
तत्र कन्या यदि भवेत् सा भवेन्नरचेष्टिता ॥ ४० ॥
आसेक्यश्च सुगन्धी च कुम्भीकश्चेर्ष्यकस्तथा ।
सरेतसस्त्वमी ज्ञेया अशुक्रः षण्डसंज्ञितः ॥ ४१ ॥
ऋतु-स्नाता तु या नारी स्वप्ने मैथुनमाहवेत् ।

ऋतुकाल में जो व्यक्ति मोह से स्त्रियों की तरह स्त्री में प्रवृत्त होता है अर्थात् उत्तान भाव से शयन करके स्त्री को छाती के ऊपर रखकर मैथुन क्रिया संपन्न करता है उस का षण्डक नामक सन्तान उत्पन्न होता है ॥ ३९ ॥

ऋतुकाल में स्त्री अगर पुरुष की तरह सुरत क्रिया में प्रवृत्त हो अर्थात् पुरुष के ऊपर आरोहण करके रमण करे तो उससे यदि कन्या पैदा हो तब वह कन्या का कार्य्यादि पुरुष के माफ़िक होता है ॥ ४० ॥

आसेक्य, सुगन्धी, कुम्भीक, तथा ईर्ष्यक ये चार प्रकार के पुरुषों के शुक्र हैं किन्तु षण्डसंज्ञक इन पुरुष के शुक्र नहीं रहता ॥ ४१ ॥

आर्त्तवं वायुरादाय कुक्षौ गर्भं करोति हि ॥
मासि मासि विवर्द्धेत गर्भिण्या गर्भलक्षणम् ।
कललं जायते तस्या वर्जितं पैत्रिकैर्गुणैः ॥ ४२ ॥

सर्प वृश्चिक-कूष्माण्ड-विकृताकृतयश्च ये ।
गर्भास्त्वेते स्त्रियाश्चैव ज्ञेयाः पापकृता भृशम् ॥४३॥

गर्भो वातप्रकोपेन दौहृदे चावमानिते ।
भवेत् कुब्जः कुणिः पङ्गुर्मूको मिन्मिनमेवच ॥ ४४ ॥

ऋतुस्नाता स्त्री स्वप्न में यदि मैथुन करे तब वायु उसका आर्तव को ग्रहण करके गर्भ उत्पन्न करता है। महीने २ में गर्भ का लक्षण प्रगट होता है वह गर्भ में पैत्रक गुणहीन कलल उत्पन्न होता है ॥ ४२ ॥

सांप, बिच्छू तथा कुष्माण्ड प्रभृतियों के तरह विकृताकारविशिष्ट गर्भ हो तो उसको पापज जानना ॥ ४३ ॥

गर्भिणी का दौहृद अर्थात् गर्भकालीन अभिलाष अर्थात् भोजनादि का आकाङ्क्षा पूर्ण न हो तो वायु प्रकुपित होकर गर्भिणी को कुनि, पङ्गु, मूक (बौर) तथा मिन्मिन सन्तान उत्पन्न करदेता है ॥ ४४ ।

राजसन्दर्शने यस्या दौहृदं जायते स्त्रियाः ।
अर्थवन्तं महाभागं कुमारं सा प्रसूयते ॥ ४५ ॥
दुकूलपट्टकौशेयभूषणादिषु दौहृदात् ।
अलङ्कारैषिणं पुत्रं ललितं सा प्रसूयते ॥ ४६ ॥
आहाराचारचेष्टाभिर्यादृशीभिः समन्वितौ ।
स्त्रीपुरुषौ समुपेयातां तयोः पुत्रोऽपि तादृशः ॥ ४७ ॥
मातापित्रोस्तु नास्तिक्यादशुभैश्च पुराकृतैः ।
वातादीनाञ्च कोपेन गर्भो विकृतिमाप्नुयात् ॥ ४८ ॥

जिस गर्भिणी को राज-दर्शन में अभिलाषा होती है वह स्त्री अर्थवान् महाभाग सन्तान को प्रसव करती है॥४५॥

जो गर्भिणी को दुकूल अर्थात् सूक्ष्म वस्त्र, पट्ट वस्त्र, कौशेय वस्त्र तथा भूषणादि में अभिलाषा होती है वह स्त्री अलङ्काराभिलाषी सुन्दर सन्तान को प्रसव करती है ॥ ४६ ॥

स्त्री और पुरुष जैसा आहार, आचार और चेष्टा से समन्वित होकर मैथुन में प्रवृत्त होते हैं उनकी सन्तान भी वैसी ही होती हैं ॥ ४७ ॥

माता-पिता नास्तिक होने से तथा पूर्वजन्म-कृत अशुभ कर्म्म समूह से एवं वातादि दोषों के प्रकोप से गर्भ विकृति को प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥

विवृतशायिनी नक्तचारिणी च उन्मत्तं जनयति,

अपस्मारिणं पुनः कलिकलहाचारशीला ॥ ४६ ॥

व्यवायशीला दुर्व्वपुषं अह्रीकं स्त्रैणं वा ॥ ५० ॥

शोकनित्या भीतं अनपचितं अल्पायुषं वा ॥ ५१ ॥

अभिध्यात्री परोपतापिनं ईर्ष्युं स्त्रैणं वा ॥ ५२ ॥

गर्भिणी हस्त पदादि फैलाकर शयन करै तो अथवा रात्रि में भ्रमण करै तो उन्माद रोगग्रस्त सन्तान प्रसव करती है परन्तु जो गर्भिणी कलिरूप से वाक्यरूप से तथा कलह (अङ्गभङ्गादियों) में झगड़ा करै तो वह गर्भिणी अपस्मार रोगग्रस्त सन्तान को प्रसव करती है॥४६॥

जो गर्भिणी सर्वदा पुरुष के साथ रमण करती है वह दुर्वपुष अर्थात् विकलाङ्ग सन्तान को प्रसव करती है किंवा वह स्त्री निर्लज्ज होती है अथवा उसका स्त्रैण सन्तान उत्पन्न होता है ॥ ५० ॥

जो स्त्री गर्भावस्था में सर्वदा शोकातुरा रहती है वह स्त्री भीत, कृश, अथवा अल्पायु सन्तान को प्रसव करती है ॥ ५१ ॥

जो स्त्री गर्भावस्था में परद्रव्य में लोभ करती है उसका परपीड़क ईर्ष्यी अथवा स्त्रैण सन्तान उत्पन्न होता है ॥ ५२ ॥

अमर्षिणी चण्डं औपाधिकं असूयकं वा ॥ ५३ ॥

स्वप्ननित्या तन्द्रालुं अबुधं अल्पाग्निं वा ॥ ५४ ॥

मद्यनित्या पिपासालुं अनवस्थितचित्तं वा ॥ ५५ ॥

गोधामांसप्रिया शार्करिलं अश्मरिलं शनै मौहिनं वा ॥५६॥

वराहमांसप्रिया रक्ताचं क्रथनं अनतिपुरुषरोमाणं वा ॥५७॥

जो स्त्री गर्भावस्था में सर्वदा क्रोधयुक्त रहती है उसका सन्तान क्रोधी, कपटचारी अथवा निन्दा करनेवाला सन्तान उत्पन्न होता है ॥ ५३ ॥

जो स्त्री गर्भावस्था में सर्वदा निद्रा से अभिभूत रहती है वह गर्भिणी तन्द्रायुक्त, मूर्ख अथवा अग्निमांन्द्य रोगयुक्त सन्तान को प्रसव करती है ॥ ५४ ॥

जो स्त्री गर्भावस्था में नियत शराब को पीती है वह गर्भिणी पिपासायुक्त अथवा अनवस्थितचित्तवाले सन्तान को प्रसव करती है ॥ ५५ ॥

जो स्त्री सर्वदा गोधा (गोह) मांस को सेवन करती है उसका शर्करामेहयुक्त, अश्मरीयुक्त अथवा शनैमेहयुक्त सन्तान उत्पन्न होता है ॥ ५६ ॥

जो गर्भिणी बराह (सुअर) का मांस भक्षण करती

मत्स्यमांसनित्या चिरनिमिषं स्तब्धाक्षं वा ॥ ५८ ॥

मधुरनित्या प्रमेहिनं मूकं अतिस्थूलं वा ॥ ५९ ॥

अम्लनित्या रक्तपित्तिनं त्वगक्षिरोगिणं वा ॥ ६० ॥

लवणनित्या शीघ्रवलीपलितखालित्यरोगिणं वा ॥ ६१ ॥

है वह अङ्गना लोहित चक्षु, उच्छ्वासरोधी अथवा कर्कश लोमयुक्त सन्तान को प्रसव करती है ॥ ५७ ॥

जो स्त्री गर्भावस्था में मत्स्य और मांस अधिक परिमाण से सेवन करती है वह स्त्री अतिमेषयुक्त सन्तान अथवा स्तब्धाक्ष सन्तान उत्पन्न करती है ॥ ५८ ॥

जो गर्भवती स्त्री सर्वदा मधुर रसविशिष्ट द्रव्य समूह को भक्षण करती है उस स्त्री का सन्तान मेह-युक्त, मूक तथा स्थूलकायविशिष्ट होता है ॥ ५९ ॥

गर्भावस्था में अधिक अम्ल द्रव्य सेवन करने से सन्तान रक्तपित और चर्मरोग अथवा चक्षुरोग से आक्रान्त होते हैं ॥ ६० ॥

गर्भावस्था में नित्य अधिक परिमाण से लवणरस सेवन करे तो सन्तान का अल्पावस्था में ही वली (त्वचा की लोलता); और केशादि पक जाते हैं ॥ ६१ ॥

कटुकनित्या दुर्बलं अल्पशुक्रं अनपत्यं वा ॥ ६२ ॥

तिक्तनित्या शोषिणं अबलं अनवचितं वा ॥ ६३ ॥

कषायनित्या श्यावं आनाहिनं उदावर्त्तिनं वा ॥ ६४ ॥

यद्यच्च यस्य यस्य व्याधेर्निदानमुक्तं तत्तदा सेवमानान्तर्वत्नी तद्विकारबहुलं अपत्यं जनयति ॥६५॥

तस्मादहितानाहारविहारान् प्रजासम्पदं इच्छन्ती

गर्भावस्था में सर्वदा कटुद्रव्य (मरिच प्रभृति) सेवन करने से अनपत्य (सन्तानोत्पादक शक्तिविहीन) और दुर्बल सन्तान उत्पन्न होता है ॥ ६२ ॥

गर्भावस्था में निम्बादि तिक्त द्रव्य अधिक परिमाण से सेवन करै तो शोषरोगाक्रान्त दुर्बल तथा धात्वादिकों की परिपुष्टि से रहित सन्तान होता है ॥ ६३ ॥

गर्भावस्था में कषाय द्रव्य अधिक परिमाण से सेवन करै तो श्यामवर्ण सन्तान अथवा आनाह तथा उदावर्त रोगाक्रान्त सन्तान उत्पन्न होता है । ६४ ॥

जिस २ रोग का जो जो कारण कहा है अगर गर्भिणी उन २ कारणों को सर्वदा सेवन करै तब वह कारण सेवन जन्य उसका सन्तान भी तत्तत् रोगाक्रान्त होते हैं ॥ ६५ ॥

स्त्री विशेषेण वर्जयेत् । साध्वाचारा च आत्मानं उपचरेत् हिताभ्यामाहारविहाराभ्याम् ॥ ६६ ॥

पूर्णमिव तैलपात्रं असंक्षोभ्य अन्तर्वत्नी भवति उपचर्या ॥ ६७ ॥

तत्र तेजोधातुः सर्ववर्णानां प्रभवः । स यदा गर्भोत्पत्तावब्धातुप्रायो भवति तदा गर्भं गौरं करोति, पृथिवी-

---

जो स्त्री सुसन्तान का अभिलाषा करती है उसको अविधिपूर्वक आहारविहार को अनुष्ठान करना कोई तरह उचित नहीं है । अतएव सन्तानार्थिनी स्त्री को सर्वदा सदाचारशीला तथा हिताहारविहारसेवनी होना चाहिये ॥ ६६ ॥

गर्भिणी व्याधिग्रस्त होने से मृदु, मधुर, शीतल तथा सुखप्रिय औषध और परिणाम में सुखकर तथा प्रिय आहार से गर्भिणी का रोग दूर करना, जैसा ही तैलपूर्ण वर्त्तन अति सावधानता से संचालनादि करना पड़ता है वैसेही गर्भिणी का भी कोई प्रकार से विक्षोभित न करके इलाज और सेवा करना चाहिये ॥ ६७ ॥

तेजोधातु सर्वविध वर्णों का उत्पादक (अर्थात् कारण है) वह तेजोधातु गर्भाधान के समय में अगर

धातुप्रायः कृष्णं, पृथिव्याकाशधातुप्रायः कृष्णश्यामं, तोयाकाशधातुप्रायो गौरश्यामं । यादृग्वर्णमाहारमुपसेवते गर्भिणी तादृग्वर्णप्रसवा भवतीत्येके भाषन्ते ॥ ६८ ॥

तत्र दृष्टिभागमप्रतिपन्नं तेजो जात्यन्धं करोति । तदेव रक्तानुगतं रक्ताक्षं, पित्तानुगतं पिङ्गलाक्षं, श्लेष्मानुगतं शुक्लाक्षं, वातानुगतं विकृताक्षमिति ॥ ६९ ॥

आप्यधातुबहुल हो अर्थात् उसमें अगर जल का भाग अधिक रहे तो गर्भ गौरवर्ण होता है अगर गर्भ पृथिवी धातु बहुल हो तो गर्भ कृष्ण वर्ण, अगर पृथिवी और आकाश धातु-बहुल हो तो श्याम-कृष्ण वर्ण, अगर जल और आकाश-धातु बहुल हो तो गर्भ गौर-श्यामवर्ण होता है । कोई २ आचार्य कहते हैं कि गर्भिणी जिस वर्ण-विशिष्ट द्रव्यों को आहार करती है वैसे ही वर्ण विशिष्ट सन्तान प्रसव होता है ॥ ६८ ॥

तेजोधातु गर्भ के दृष्टिभाग में अवस्थान करने के कारण से सन्तान जन्मान्ध होता है । तेजो धातु रक्तानुगत होने से सन्तान रक्ताक्ष, पित्तानुगत होने से पिङ्गलाक्ष, श्लेष्मानुगत होने से शुक्लाक्ष, और वातानुगत होने से विकृताक्ष होता है ॥ ६९ ॥

मलाल्पत्वादयोगाच्च वायोः पक्वाशयस्य च ।
वातमूत्रपुरीषाणि न गर्भस्थः करोति हि ॥ १० ॥
जरायुणा मुखेच्छन्ने कण्ठे च कफवेष्टिते ।
वायोमार्गनिरोधाच्च न गर्भस्थः प्ररोदिति ॥ ११ ॥
निःश्वासोच्छ्वाससंक्षोभस्वप्नान् गर्भोऽधि गच्छति ।
मातुर्निश्वसितोच्छ्वाससंक्षोभस्वप्नसंभवान् ॥ १२ ॥

मातुस्तु रसवहायां नाड्यां गर्भनाभि-नाड़ी प्रतिबद्धा, साऽस्य मातुराहाररसवीर्यमभिवहति । तेनोपस्नेहेनास्याभि-

---

मल का परिमाण थोड़ा होने से और वायु का तथा पक्काशय का असम्यक् योग के कारण से गर्भस्थ सन्तान वात, मूत्र तथा मल को त्याग नहीं करता ॥ १० ॥

जरायु से मुख ढक जाने के कारण और कफ से कण्ठ वेष्टित होने के स्वभाव से तथा वायु का मार्ग रुक जाने के हेतु गर्भस्थ सन्तान नहीं रोता है ॥ ११ ॥

माता के निःश्वास, प्रश्वास, संक्षोभ तथा निद्रा से गर्भस्थ सन्तानक भी निःश्वास, प्रश्वास, संक्षोभ तथा निद्रा को प्राप्त करता है ॥ १२ ॥

माता के अर्थात् गर्भिणी के रसवहा नाड़ी में गर्भस्थ सन्तान की नाड़ी संलग्न है । वह नाड़ी मातृ

वृद्धिर्भवति । असंजाताङ्गप्रत्यङ्गविभागमानिषेकात् प्रभृति सर्वशरीरावयवानुसारिणीनां रसवहानां तिर्यग्गतानां धमनीनामुपस्नेहो जीवयति ॥ ७३ ॥

गर्भस्य केशश्मश्रुलोमास्थिनखदन्तशिरास्नायुधमनी-रेतःप्रभृतीनि स्थिराणि पितृजानि ॥ ७४ ॥

मांसशोणितमेदोमज्जहृन्नाभियकृत्प्लीहान्त्रगुदप्रभृतीनि मृदूनि मातृजानि ॥ ७५ ॥

भुक्त आहार का रस-वीर्य गर्भ शरीर में वहन करती है इसलिये उपस्नेहन्याय से गर्भ की वृद्धि होती है। जब-तक अङ्गप्रत्याङ्गादि प्रव्यक्त अर्थात् प्रगट नहीं होते तब-तक शुक्र के निषेक से ही अर्थात् गर्भाधानके बाद से ही गर्भिणी का सर्वशरीरावयवगामिनी तिर्य्यग्गता रसवहा धमनियों से असंजात अङ्गप्रत्याङ्गविशिष्ट गर्भ को जीवित रखता है ॥ ७३ ॥

गर्भ के अर्थात् सन्तान के केश, दाढ़ी, रोआं, हड्डी, नख, दन्त, शिरा, स्नायु, धमनी, तथा शुक्र प्रभृति स्थिर-पदार्थसकल पितृज अर्थात् शुक्र से उत्पन्न होता है ॥ ७४ ॥

मांस, रक्त, मेदा, मज्जा, हृदय, नाभि, यकृत्, प्लीहा,

शरीरोपचयो बलं वर्णः स्थितिर्हानिश्च रसजानि ॥ ७६ ॥

इन्द्रियाणि ज्ञानं विज्ञानमायुः सुखदुःखादिकञ्चा-त्मजानि ॥ ७७ ॥

वीर्यमारोग्यं बलवर्णौ मेधा च सात्म्यजानि ॥ ७८ ॥

संनिवेशः शरीराणां दन्तानां पतनोद्भवौ ।
तलेष्वसंभवो यश्च रोम्णा मेतत्स्वभावतः ॥७६॥

अंतड़ी और गुदा-नाडी प्रभृति कोमल पदार्थ सकल मातृज अर्थात् आर्त्तव से उत्पन्न होता है ॥ ७५ ॥

शरीर की पुष्टि, बल, वर्ण, स्थिति और हानि ये सकल रसज है ॥ ७६ ॥

इन्द्रियसमूह, ज्ञान, विज्ञान, आयु और सुखदुःखादि आत्मज है ॥ ७७ ॥

वीर्य, आरोग्य, बल, वर्ण और मेधा ये समस्त सात्म्यज हैं ॥ ७८ ॥

करचरणादि शरीरावयव समूह का यथाक्रम से यथायथस्थान में सन्निवेश, दन्तसमूह के पतन और उद्भव तथा हस्त और पादतल में रोमसमूह का अनुद्भव अर्थात् नहीं होना ये सकल स्वभाव ही से होता है ॥ ७६ ॥

कर्मणा चोदितो येन तदाप्नोति पुनर्भवे ।
अभ्यस्ताः पूर्वदेहे ये तानेव भजते गुणान् ॥ ८० ॥

गर्भस्य हि सम्भवतः पूर्वं शिरः सम्भवतीत्याह शौनकः शिरोमूलत्वात् देहेन्द्रियाणाम् । हृदयमिति कृतवीर्य्यो बुद्धेर्मनसश्च स्थानत्वात् । नाभिरिति पाराशर्य्यस्ततो हि वर्द्धते देहो देहिनः । पाणिपादमिति मार्कण्डेयस्तन्मूलत्वाच्चेष्टया गर्भस्य । मध्यशरीरमिति सुभूतिगौतमस्तन्निबद्धत्वात् सर्वगात्रसंभवस्य । तत्तु न सम्यक् । सर्वाङ्गप्रत्यङ्गानि युगपत् सम्भवन्तीत्याह धन्वन्तरिः गर्भस्य सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यन्ते चूतफलवत् वंशाङ्कुरवच्च । तद्यथा चूतफले परिपक्वे केशरमांसास्थिमज्जानः पृथग् दृश्यन्ते कालप्रकर्षात् । तान्येव तरुणे नोपलभ्यन्ते सूक्ष्मत्वात् । तेषां केशरादीनां कालः प्रव्यक्ततां करोति । एतेनैव वंशाङ्कुरोऽपि व्याख्यातः । एवं गर्भस्य तारुण्ये सर्वेष्वङ्गप्रत्यङ्गेषु

जीव जिस प्रकार के कर्मों से प्रेरित होता है अर्थात् यह लोक परित्याग करता है पुनर्जन्म में भी उन सब कर्म समूहों को प्राप्त होता है। पूर्वजन्म में जो सकल गुण अभ्यस्त हैं यह जन्म में भी उन सब गुणसमूहों को प्राप्त करता है ॥ ८० ॥

सत्स्वपि सौक्ष्म्यादनुपलब्धिः । तान्येव कालप्रकर्षात् प्रव्यक्तानि भवन्ति । अतएवोक्तञ्च सांख्य-शास्त्रे ।

> "असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसंभवाभावात् ।
> शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्चसत्कार्यम्" ॥ ८१ ॥

शौनक कहते हैं कि संभवतः पहिले गर्भ का मस्तक उत्पन्न होता है क्योंकि मस्तक ही देहेन्द्रियसमूह का मूल है, कृतवीर्य कहते हैं कि सब से पहिले हृदय उत्पन्न होता है क्योंकि हृदय ही बुद्धि और मनका स्थान है। पराशर के पुत्र कहते हैं कि नाभि पहिले उत्पन्न होता है क्योंकि माता का रसवहा नाड़ी में गर्भ का नाड़ी प्रति-बद्ध होने के कारण से उससे ही गर्भ का देह वर्द्धित होता है। मार्कण्डेय कहते हैं कि पहिले हस्तपद उत्पन्न होता है क्योंकि हस्तपद ही समस्त चेष्टा का मूल है। सुभूतिगौतम कहते हैं कि पहिले मध्यशरीर उत्पन्न होता है क्योंकि समस्त गात्रावयव मध्य-शरीर में ही संलग्न रहता है। यह सब सिद्धान्त ठीक नहीं है। धन्वन्तरि कहते हैं कि समस्त अङ्गप्रत्यङ्ग युगपत् (एक-साथ) उत्पन्न होता है, अतिसूक्ष्म होने के कारण वंशाङ्कुर और आम्र फल जैसे उपलब्ध नहीं होता है ऐसेही

असदकरणात् न सत् असत् अउतोऽकरणं तस्मात् सत्कार्यम् । इह लोकेऽसत्करणं नास्ति यथा सिकताभ्य-

---

गर्भ का समस्त अङ्गप्रत्यङ्ग भी अतिसूक्ष्म अवस्था में रहने के कारण यह सबको उपलब्ध नहीं होता है, काल के परिणाम से आम्रफल पक जाने पर उसका केशर, मांस, अस्थि (गुठली) और मज्जा अलग २ देखने में आता है किन्तु वह केशरादि आम्र की तरुण अवस्था में अति-सूक्ष्मत्व हेतु वह सब चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं होता है। काल ही उन सूक्ष्म केशरादिकों को प्रकट करदेता है वंशाङ्कुर को भी इसी प्रकार समझना चाहिये। अति-सूक्ष्मता के कारण तरुणावस्था में गर्भ का अङ्गप्रत्यङ्गादि देखने में नहीं आता वस्तुतः युगपत् (एकसाथ) ही गर्भ का सकल अङ्गप्रत्यङ्ग ही उत्पन्न होता है, यथासमय में वह समुदय प्रकट होता है। सांख्य-शास्त्र में कहा है कि असत् की अनुत्पत्ति, उपयुक्त उपादान का ग्रहण, सर्वसम्भव का अभाव, शक्त का शक्यकरण और कारण-भाव का समत्वहेतु कार्य्य सत् है ॥ ८१ ॥

(१) असत् का अकरण—सत् कभी असत् नहीं होता है, असत् भी सत् नहीं होता; कार्य सत् है। जगत्

स्तैलोत्पत्तिः तस्मात् सतः करणाद सत्कार्यम् । किं चान्यदुपादानग्रहणादुपादानं कारणं तस्य ग्रहणादिह लोके यो येनार्थी स तदुपादानग्रहणं करोति दध्यर्थी क्षीरस्य नतु जलस्य तस्मात् सत्कार्य्यम् । इतश्च सर्व-संभवाभावात् सर्वस्य सर्वत्र संभवो। नास्ति यथा सुवर्णस्य रजतादौ तृणपांशुसिकतासु तस्मात् सर्वसंभवाभावात् सत्कार्यम् । इतश्च शक्तस्य शक्यकरणात् । इह कुलालः शक्तो मृद्दण्डचक्रचीवररज्जुनीरादिकरणोपकरणं वा शक्य-

---

में असत् की उत्पत्ति नहीं है जैसे ही बालुका से तैल की उत्पत्ति नहीं होती है (२) उपयुक्त उपादान का ग्रहण। उपादान का अर्थ कारण है उसी का ग्रहण जैसे यह लोक में जो जिसका अर्थी है वह उसी के उपादान को ग्रहण करते हैं, जैसे दध्यर्थी व्यक्ति दूध को ही ग्रहण करता है, जल को नहीं लेता है इसी लिये कार्य सत् है । (३) सर्वसम्भवको अभाव सकल में सकल संभव नहीं होता। यथा चांदी में, तृण में, पांशु में तथा बालुका में सुवर्ण का संभव नहीं होता है इसवास्ते सर्वसंभव के अभाव के कारण कार्य सत् है। (४) शक्त का शक्यकरण—जैसे कुम्भकार

मेव घटं मृत्पिण्डादुत्पादयति तस्मात् सत्कार्यम् । कारणं यल्लक्षणं तल्लक्षणमेव कार्यमेव यथा यवेभ्योऽपि यवाः व्रीहिभ्यो व्रीहयः यदाऽसत्कार्यम् स्यात्तत: कोद्रवेभ्यः शालयः स्युर्न च सन्तीति तस्मात् सत्कार्यम् ॥ ८२ ॥

तत्र प्रथमे मासि कललं जायते ॥ ८३ ॥

शक्त है, मृत्पिण्ड, चक्र, चीवर, रज्जु जलादि करण और मृत्पिण्ड उपकरण ये सकल करण वा उपकरणों से घट बनता है इसीलिये कार्य सत् है। (५) कार्यकारण-भाव का समत्व अर्थात् कार्य और कारण एक लक्षणाक्रान्त है। कारण जिस लक्षणाक्रान्त होता है कार्य भी उसी लक्षणविशिष्ट होता है, यथा यव से यव ही का संभव है अर्थात् यव से यव ही उत्पन्न होता है। व्रीहि धान्य में व्रीहि धान्य का ही संभव है। इत्यादि। अगर कार्य असत् हो तो कोद्रव से शालिधान्य की उत्पत्ति क्यों नहीं होती है। किन्तु इसका संभव नहीं है इसीलिये कार्य सत् है ॥ ८२ ॥

प्रथम महीने में गर्भ का कलल अर्थात् शुक्र और शोणित के संमूर्च्छन से सन्तानोत्पादकशक्तिविशिष्ट थोड़ा तरल पदार्थ विशेष उत्पन्न होता है ॥ ८३ ॥

अकस्मात् प्रथमे मासि गर्भे भवति वेदना ।
गोक्षीरैः पाचयेत्तुल्यं पद्मकोशीरचन्दनं ।
पलमात्रं पिबेन्नारी त्र्यहं गर्भः स्थिरो भवेत् ।
अथवा मधुकं दारु शाकवृक्षस्य बीजकम् ।
संपिष्य क्षीरकाकोलीं पिबेत् क्षीरैस्तु गोभवैः ॥ ८४ ॥

द्वितीयमासि शीतोष्मानिलैरभिप्रपच्यमानानां महाभूतानां संघातो घनः संजायते, यदि पिण्डः पुमान्, स्त्री चेत् पेशी, नपुंसकं चेदर्बुदमिति ॥ ८५ ॥

अकस्मात् प्रथम महीने में गर्भ में वेदना उपस्थित हो तो पद्मक, खस और रक्तचन्दन गोदुग्ध में पका कर आठ तोला परिमाण तीन रोज तक सेवन करे तो गर्भ स्थिर होता है। अथवा मुलहठी, देवदारु, शगुन वृक्ष के बीज तथा क्षीरकाकोली इन सब द्रव्यों को पीसकर गोदुग्ध के साथ पिये तो गर्भ स्थिर होता है ॥ ८४ ॥

द्वितीय महीने में श्लेष्मा और वायु से गर्भ का महाभूत सकल परिपाक को प्राप्त होकर घन अर्थात् कठिन होजाता है अगर वह घन पिण्डाकार हो तो पुत्र, पेशी के माफिक अर्थात् सूत्रगुच्छवत् दीर्घाकृति हो तो कन्या और अर्बुदाकार हो तो नपुंसक सन्तान उत्पन्न होता है ॥ ८५ ॥

नीलोत्पलं मृणालं च षष्टि कर्कटशृङ्गिका ।
गोक्षीरैस्तु द्वितीयेऽपि पीत्वा शाम्यति वेदना ॥
अथाश्वत्थवल्कलं च तिलं कृष्णं शतावरी ।
मञ्जिष्ठासहितं पिष्ट्वा पिबेत् क्षीरैश्चतुर्गुणैः ॥ ८६ ॥
तृतीये मासि हस्तपादशिरसां पञ्चपिण्डिका निर्व्व-
र्त्तन्तेऽङ्गप्रत्यङ्गविभागश्च सूक्ष्मो भवति ॥ ८७ ॥
श्रीखण्डं च वचा कुष्ठं मृणालं पद्मकेशरम् ।
पिबेत् शीतोदके पिष्ट्वा तृतीये वेदनावती ॥

नीलकमल, मृणाल, षाटी, काकड़ाशृंगी, ये सब द्रव्य गोदुग्ध के साथ पीने से वेदना की शान्ति होती है। अथवा पीपल के वल्कल, कृष्ण तिल, काला मरिच, शतावर, मंजीठ ये सब द्रव्य पीसकर चतुर्गुण दूध के साथ पिये तो वेदना शान्त होती है ॥ ८६ ॥

तृतीय महीने में हस्तद्वय, पदद्वय और मस्तक इन पांच अङ्गों का पांच पिण्ड होता है और अङ्ग अर्थात् वक्ष, पृष्ठ तथा उदर एवं प्रत्यङ्ग अर्थात् चीबुक, नासा, ओष्ठ, कर्ण, अङ्गुली, पार्ष्णि प्रभृति अतिसूक्ष्म रूप से उत्पन्न होते हैं ॥ ८७ ॥

श्वेत चन्दन, बच, कूठ, मृणाल, पद्मकेशर ये

अथवा क्षीरकाकोलीं बलां पिष्ट्वा पयः पिबेत् ॥ ८८ ॥

चतुर्थे मासि सर्वाङ्गप्रत्यङ्गविभागः प्रव्यक्ततरो भवति । स्थिरत्वमापद्यते गर्भः; तस्मात् तदा-गर्भिणी गुरुगात्रत्वमधिकमापद्यते विशेषेण । गर्भहृदय-प्रव्यक्तभावाच्चेतनाधातुरभिव्यक्तो भवति, कस्मात् ? तत्स्थानत्वात् । तस्मात् गर्भश्चतुर्थेमास्यभिप्राय मिन्द्रियार्थेषु करोति । द्विहृदयां च नारी दौहृदिनी-माचक्षते । दौहृदविमाननात् कुब्जं कुणिं खञ्जं जड़ं

सब द्रव्य ठंडे जल में पीसकर तृतीय महीने में वेदना-वती प्रसूती को पिलावे । अथवा क्षीरकाकोली, गान्धाली को पीस कर सेवन करे और तदनन्तर दूध को पीवे ॥ ८८ ॥

चतुर्थ महीने में गर्भ का समस्त अङ्गप्रत्यङ्गादि विशेष भाव से प्रकट होते हैं । गर्भ स्थिरता को प्राप्त होने के कारण गर्भिणी का शरीर अधिक भारी होता है । गर्भ-हृदय प्रव्यक्त होने के कारण चेतना धातु भी अभिव्यक्त अर्थात् प्रकट होता है क्योंकि हृदय ही चेतना धातु का स्थान है सुतरां हृदय प्रव्यक्त होने से ही चेतना धातु प्रव्यक्त होता है इसवास्ते ही गर्भिणी चतुर्थमहीने में रूपरसादि इन्द्रियों के विषय में अभिलाषा करती है ।

वामनं विकृताक्षमनक्षं वा नारी सुतं जनयति । तस्मात् सा यद्यदिच्छेत् तत्तस्यै दापयेत् । लब्धदौहृदा हि वीर्यवन्तं चिरायुषं च पुत्रं जनयति ॥ ८६ ॥

नीलोत्पलं मृणालानि गोक्षुरं च कशेरुकम् ।
तुर्यमासे गवां क्षीरैः पिबेत् सा वेदनावती ॥
अथवा मधुकं रास्ना श्यामा ब्राह्मणयष्टिका ।
अनन्तां पेषयित्वा थ गवां क्षीरेण संपिबेत् ॥ ९० ॥

इसीलिये तब से गर्भिणी को द्विहृदया अथवा दौहृदिणी कहते हैं । गर्भिणी की तात्कालिक अभिलाषा अवमानना अर्थात् अभिलाषा पूर्ण न होने से कुब्ज, कूणी, खञ्ज, जड़, वामन, विकृतनेत्र वा नेत्रहीन सन्तान को प्रसव करती है । अतएव द्विहृदया स्त्री जो २ वस्तु को अभिलाषा करती है उन २ वस्तुओं को देना चाहिये । गर्भिणी की अभिलाषा पूर्ण होने से वीर्यवान् तथा दीर्घायु सन्तान को प्रसव करती है ॥ ८६ ॥

चतुर्थ महीने में वेदनावती प्रसूती नीलकमल, मृणाल, गोखरू कशेरू ये सब द्रव्य गोदुग्ध के साथ पीवे । अथवा मुलहठी, रास्ना, श्यामा, बरंगी, दुधि ये सब द्रव्य पीसकर गोदुग्ध के साथ पीलेवे तो वेदना की शान्ति होती है ॥ ९० ॥

पञ्चमे मासि मनः प्रबुद्धतरः भवति । गर्भस्य मांस-शोणितोपचयः भवति अधिकमन्येभ्यः मासेभ्यः, तस्मात् तदा गर्भिणी कार्श्यमापद्यते विशेषेण ॥ ६१ ॥

पुनर्नवां च काकोलीं तगरं नीलमुत्पलम् ।
गोक्षीरं पञ्चमे मासि गर्भक्लेशहरं पिवेत् ॥
अथवा बृहतीयुग्मं यज्ञाङ्गं कटुकं त्वचम् ।
गोघृतं क्षीरसंयुक्तं पिवेत् पिष्ट्वा च पञ्चमे ॥ ६२ ॥

षष्ठे मासि बुद्धिः । गर्भस्य बलवर्णोपचयः भवति अधिकमन्येभ्यः मासेभ्यः, तस्मात् गर्भिणी बलवर्णहानि-मापद्यते विशेषेण ॥ ६३ ॥

पञ्चम महीने में मन प्रव्यक्ततर होता है और गर्भ-शरीर में मांस और शोणित अधिक परिमाण से संचित हो चलता है इसवास्ते उस समय में गर्भिणी अतिकृशा होती है ॥ ६१ ॥

श्वेतपुनर्नवा, काकोली, तगर, नीलकमल ये सकल द्रव्य गोदुग्ध के साथ पीसकर पीवे । अथवा दो प्रकार की भटकटैया, गूलर, सरसों, दालचीनी ये सकल द्रव्य गोदुग्ध और गोघृत के साथ मिलाकर गर्भिणी पिये तो वेदना शान्त होती है ॥ ६२ ॥

षष्ठ महीने में बुद्धि उत्पन्न होती है । गर्भ-शरीर में

सिता कपित्थमज्जा च शीततोयेन पेषयेत्।
षष्ठेमासि गर्भाक्षीरैः पिबेत् क्लेशनिवृत्तये॥
अथवा गोक्षुरं शिग्रु मधुकं पृश्निपर्णिकाम्।
बलायुक्तां पिबेत् पिष्ट्वा गोदुग्धैः षष्ठमासके॥ ६४॥

सप्तमे मासि सर्वाङ्गप्रत्यङ्गविभागः प्रव्यक्ततरो भवति। सर्वभावे आप्याय्यते सहसा, तस्मात् तदा गर्भिणी सर्वाकारैः क्लान्ततमा भवति॥ ६५॥

कसेरु पौष्करं मूलं शृङ्गाटं नीलमुत्पलम्।

बल और वर्ण का उपचय होता है सुतरां इस समय में गर्भिणी का बल और वर्ण क्षीण होता है॥ ६३॥

षष्ठ महीने में वेदना शान्ति के लिये गर्भिणी शर्करा तथा कैथ का गूदा शीतल जल में पीसकर पीवे। अथवा गोखरू, सहजन, मुलहठी, पिठिवन और बला ये सकल द्रव्य गोदुग्ध के साथ पीसकर पीलेवे॥ ६४॥

सप्तम महीने में अङ्गप्रत्यङ्ग का विभाग परिस्फुट होता है और गर्भ का समस्त विषय ही सहसा वृद्धि को प्राप्त होता है इसवास्ते उस समय में गर्भिणी भी सर्व-प्रकार से ही क्षीणा और क्लान्ता होती है॥ ६५॥

सप्तम महीने में वेदना शान्ति के लिये गर्भिणी

पिष्ट्वा च सप्तमे मासि क्षीरैः पीत्वा प्रशाम्यति ॥
अथवा मधुकं द्राक्षां शृङ्गाटं च कशेरुकम् ।
मृणालं शर्करायुक्तं क्षीरैः पेयं तु सप्तमे ॥ ९६ ॥

अष्टमे मासि गर्भश्च मातृतो गर्भतश्च माता रस-वाहिनीभिः मुहुर्मुहुरोजः परस्परत आददाते गर्भस्य पूर्ण-त्वात्, तस्मात् तदा गर्भिणी मुहुर्नन्दायुक्ता भवति मुहु-र्मुहुश्चग्लाना, तस्मात् तदागर्भस्य जन्मव्यापद् भवतीति

मोथा, पुष्करमूल, सिंहाड़ा, नीलकमल ये सब द्रव्य पीसकर दूध के साथ पीलेवे । अथवा मुलहठी, मुनक्का, सिंघाड़ा, मोथा, और मृणाल ये सब द्रव्य शर्करा के साथ मिलाकर दुग्ध के साथ मिलाकर गर्भिणी को पिलादेवे ॥ ९६ ॥

अष्टम महीने में गर्भ-शरीर पूर्णावयव को प्राप्त करता है इसीलिये गर्भिणी से गर्भ और गर्भ से गर्भ-धारिणी रसवहा धमनियों से ओजो धातु को ग्रहण करती है सुतरां उस समय में गर्भिणी बार २ आनन्दिता और बार २ ग्लानियुक्ता होती है । अपिच (और भी) ओजो धातु का इसीप्रकार अनवस्थान के हेतु गर्भ का जन्मविषय में विघ्न पैदा होने का संभावना है इस-

ओजसोऽनवस्थितत्वात् तं च एवमभिसमीक्ष्य अष्टमं मासं गर्भिण्या अहितमिति आचक्षते कुशलाः ॥ ९७ ॥

षष्ठी पद्मकं मुस्तां कशेरु गजपिप्पली ।
नीलोत्पलं गवाक्षीरैः पिबेदष्टममासके ॥
अथवा बिल्वमूलं च कपित्थं बृहतीफलम् ।
इक्षुपटोलयोर्मूलमेभिः क्षीरं प्रसाधयेत् ।
तत्क्षीरमम्भसा पीत्वा गर्भे शाम्यति वेदना ॥ ९८ ॥

नवमदशमैकादशद्वादशानामन्यतमस्मिन्मासि गर्भिणी

वास्ते ज्ञानीगण अष्टममास को गर्भिणी के बारे में अति-दोषावह कहकर निर्देश किया है ॥ ९७ ॥

गर्भिणी वेदनाशान्ति के लिये अष्टम महीना में षाटी धान्य, पद्मकमोथा, कशेरु, गजपीपल, नीलकमल ये सकल द्रव्य गोदुग्ध के साथ पीवे। अथवा बेल वृक्ष के मूल की छाल, कैथ का गूदा, भटकटैया का फल, इक्षु और पटोल का मूल इन सब को दुग्ध के साथ पकाकर जल के साथ सेवन करै तो गर्भिणी की वेदना शान्त होती है ॥ ९८ ॥

तदनन्तर नवम मास के प्रथम दिवस से लेकर दशम मासतक प्रसव का प्रकृतकाल जानना। उस समय

प्रसूयते । अतोऽन्यथा विकारी भवति । तस्मिन्नेकदिव-सातिक्रान्तेऽपि नवमं मासमुपादाय प्रसवकालमित्याहु-रादशममासात् एतावान् कालो वैकारिकः ॥ ९९ ॥

विशालाबीज कक्कोलं मधुना सह लेहयेत् ।
वेदना नवमे मासि शान्तिमाप्नोति नान्यथा ॥
अथवा मधुकं श्यामान्वनन्ता चीरकाकोली ।
एभिः सिद्धं पिबेत् क्षीरं नवमे वेदनावती ॥ १०० ॥
शर्करा गोस्तनीक्वाथैः सक्षौद्रं नीलमुत्पलम् ।
पाययेद्दशमे मासि गवां क्षीरैः प्रशान्तये ॥

के बीच में प्रसव न होकर उस समय के पहिले अथवा पश्चात् प्रसवकाल को वैकारिक प्रसवकाल कहा है ॥९९॥

नवम महीने में वेदना शान्ति के लिये प्रसूती को इन्द्रारुण का बीज, और कक्कोल का चूर्ण मधु के साथ चटाना चाहिये । अथवा मुलहठी, श्यामा, अनन्तमूल और चीरकाकोली इन सब द्रव्यों को दुग्ध के साथ पका-कर वेदनाशान्ति के लिये गर्भिणी को पिलावे ॥ १०० ॥

दशम महीने में वेदना शान्ति के लिये गर्भिणी-दाख के क्वाथ के साथ चीनी मिलाकर तथा नीलकमल के साथ शहत मिलाकर सेवन करे । अथवा गोदुग्ध के

अथवा शुण्ठीसंसिद्धं गोक्षीरैर्दशमे पिबेत् ॥

अथवा मधूकदारु शुण्ठीं क्षीरेण संपिबेत् ॥ १०१ ॥

विशेषतस्तु गर्भपोषणार्थं गर्भिणी प्रथमद्वितीयतृतीय-मासेषु मधुरशीतद्रवप्रायमाहारमुपसेवेत । विशेषतस्तु तृतीये षष्टिकौदनं पयसा भोजयेत्, चतुर्थे दध्ना, पञ्चमे पयसा, षष्ठे सर्पिषा चेत्येके । चतुर्थे पयोनवनीतसंसृष्टमा-हारयेज्जाङ्गलमांससहितं हृद्यमन्नं भोजयेत् । पञ्चमे क्षीरसर्पिः संसृष्टं । षष्ठे श्वदंष्ट्रासिद्धस्य सर्पिषो मात्रां पाययेद् यवागूं वा । सप्तमे सर्पिः पृथक्पर्ण्यादिसिद्धमेवमाप्या-य्यते गर्भः । अष्टमे बदरोदकेन बलातिबला

साथ सोंठ का क्वाथ बनाकर अथवा मुलहठी, देवदारु और शुण्ठी दुग्ध के साथ पकाकर वेदना शान्ति के लिये दशम महीने में प्रसूती को पिलाना चाहिये ॥ १०१ ॥

गर्भिणी को हृद्य, द्रवप्रधान, मधुररस—बहुल, चिकना, अग्निदीपक तथा सुसंस्कृत भोज्य भोजन करने को देना चाहिये, प्रसवकाल तक इन साधारण नियमों का पालन करे । विशेष नियम ये हैं कि गर्भिणी प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय महीने में मधुर, शीतल, द्रवबहुल आहार करे । कोई कोई कहते हैं कि गर्भिणी को

शतपुष्पपललपयोदधिमस्तुतैललवणमदनफलमधुघृतमिश्रे-णास्थापयेत् पुराणपुरीषशुद्ध्यर्थमनुलोमार्थं च वायोः । ततः पयोमधुरकषायसिद्धेन तैलेनानुवासयेदनुलोमे हि वायौ सुखं प्रसूयते निरुपद्रवा च भवति । अतोर्द्धं स्निग्धाभिर्यवागू-भिर्जाङ्गलरसैश्चोपक्रमेदाप्रसवकालादेवमुपक्रान्ता स्निग्धा बल-

---

चतुर्थ महीने में दही के साथ, पञ्चम महीने में दूध के साथ, षष्ठ महीने में घी के साथ षष्टिक अन्न को देना चाहिये । चतुर्थ महीने में दुग्ध-मक्खन-संसृष्ट आहार देवे और जाङ्गल मांस के साथ हृद्य अन्न भोजन करावे। पञ्चम महीने में दूध और घृत संसृष्ट भोजन करावे । षष्ठ महीने में गोखरू के साथ घृत पकाकर वह घृत उपयुक्त परिमाण से गर्भिणी को पान करावे अथवा यवागू पान करावे । सप्तम महीने में विदारीगन्धादिगण के साथ घृत पकाकर वह घृत गर्भिणी को पान करावे इस से गर्भ आप्यायित होता है । अष्टम महीने में पुराण-पुरीष के शुद्धि के लिये और वायु को अनुलोमन के वास्ते बेर के क्वाथ में बीजबन्द, अतिबला (बला का भेद), सौंफ, तिलकल्क, मट्ठा, तेल, सैंधानमक, मैनफल, मधु और घृत मिलाकर उससे गर्भिणी को आस्थापित अर्थात्

वती सुखमनुपद्रवा वा प्रसूयते। नवमे मासि सूतिकागार-
मेनां प्रवेशयेत् प्रशस्त तिथ्यादौ ॥ १०२ ॥

जाते हि शिथिले कुक्षौ मुक्ते हृदयबन्धने।
सशूले जघने नारी ज्ञेया सा तु प्रजायिनी ॥ १०३ ॥

पिचकारी देना। तदनन्तर दुग्ध और मधुरगण के क्वाथ के साथ तिल तैल पकाकर उससे गर्भिणी को अनुवासन (पिचकारीविशेष-स्नेह द्रव्य से) प्रयोग करै। इससे वायु का अनुलोमन होने के कारण गर्भिणी सुख से प्रसव करती है और किसी प्रकार का उपद्रव पैदा नहीं होता। तदनन्तर प्रसव कालतक चिकना यवागू और जाङ्गल मांस का रस पान के लिये गर्भिणी को देना चाहिये। इस प्रकार इलाज होने से गर्भिणी स्निग्धा, बलवती और निरुपद्रवा होकर सुख से सन्तान को प्रसव करती है। नवम महीने में शुभ तिथिनक्षत्र प्रभृति को विचार कर गर्भिणी को सूतिका घरमें (सौरीगृह) प्रवेश करावे ॥ १०२ ॥

कोख ढीला होने पर, हृदयबन्धन, (गर्भ का नाभि नाड़ी, माता के हृदय में निवद्ध रहता है वह बन्धन) खुलजाने से और कटिदेश में वेदना उपस्थित होने पर समझना चाहिये कि गर्भिणी आसन्नप्रसवा हुई है ॥ १०३ ॥

तत्रोपस्थितप्रसवायां कटिपृष्ठं प्रति समन्ताद्वेदना भवत्यभीक्ष्णं पुरीषप्रवृत्तिर्मूत्रं प्रसिच्यते योनिमुखात् श्लेष्मा च ॥ १०४ ॥

आसन्नप्रसवायां खलु इमानि लिङ्गानि भवन्ति, तद् यथा—क्लमः गात्राणां, ग्लानिः आननस्य, अक्ष्णोः शैथिल्यम्, विमुक्तबन्धनं वक्षसः, कुक्षेः अवस्रंसनम्, अधोगुरुत्वम्, वंक्षण-वस्ति-कटि-पार्श्व-पृष्ठ-निस्तोदः, योनेः स्रवणम्, अनन्नाभिलाषश्च इति ॥ १०५ ॥

ततोऽनन्तरं आवीनां प्रादुर्भावः, प्रसेकश्च गर्भोद-

आसन्नप्रसवा गर्भिणी की कटि और पृष्ठ देश के चारों ओर में सर्वदा वेदना उपस्थित होता है। बार २ मल और मूत्र की प्रवृत्ति होती है और योनि मुख से श्लेष्मा निकलता है ॥ १०४ ॥

प्रसवोन्मुखी गर्भिणी के ये सब लक्षण होते हैं यथा, क्लान्तिबोध, मुख की मलिनता, चक्षु और उदर की शिथिलता, शरीर के अधोभाग की गुरुता, वंक्षण, मूत्राशय, कटि, पार्श्व और पृष्ठ देश में वेदना, योनिमार्ग से कफ दिस्राव और आहार में अनिच्छा होती है ॥१०५॥

प्रसवोन्मुखी गर्भिणीका वक्ष्यमाण लक्षण समूह प्रकट

कस्य, आवीप्रादुर्भावे तु भूमौ शयनं विदध्यात् मृदु आस्तरणोपपन्नं, तदध्यासीनां तां ततः समन्ततः परिवार्य यथोक्तगुणाः स्त्रियः पर्य्युपासीरन् आश्वासयन्त्यः वाग्भिः ग्राहिणीभिः उपदिष्टवत् अर्थाभिधायिनीभिः ॥ १०६ ॥

प्रजयिष्यमाणां कृतमङ्गलस्वस्तिवाचनां कुमारपरिवृतां पुन्नामफलहस्तां स्वभ्यक्तामुष्णोदकपरिषिक्तामथैनां

होता है-प्रसववेदना उपस्थित होनेपर आविस्राव (योनि मुख से एक प्रकार का जलस्राव) वेदना और जलस्राव होनेके बाद जमीन में कोमल बिछौना बिछाके उसमें गर्भिणी को सुलावे और जो स्त्री अनेक बार सन्तान को प्रसव की है, जो अनुरक्त है, कर्मकुशल और मित्रयुक्त इत्यादि गुणों से भूषित स्त्रियों को बिछौने के चारों ओर में बैठा देवै परन्तु प्रीतिकर आश्वास वाक्य से अर्थात् कोई चिन्ता नहीं, डरोमत इत्यादि मधुर वचन से गर्भिणी को शान्त्वना करै जिससे गर्भिणी को वेदना जनित तकलीफ़ शान्ति हो । १०६ ॥

आसन्नप्रसवा गर्भिणी को मङ्गलाचरण और स्वस्तिवाचन करना चाहिये । गर्भिणी को चाहिये कि कुमारवृन्दसे परिवृत रहे और गर्भिणी के हाथ में पुन्नामक

यः स्याद् दोषोऽधिकस्तेन प्रकृतिः सप्रधोदिना ॥ ३ ॥
शुक्रार्त्तवस्थैर्जन्मादौ विषेनेव विषक्रमेः ।
तैश्च तिस्रः प्रकृतयो हीनमध्योत्तमाः पृथक् ।
समधातुः समस्तासु श्रेष्ठा निन्द्या द्विदोषजाः ॥ ४ ॥
विषजातो यथा कीटो विषेण न विपद्यते ।

शुक्र और शोणित तथा गर्भिणी का भोज्य और चेष्टा एवं गर्भाशय का पीड़ा इस समुदाय से गर्भाधान समय में जो दोष अधिक रहता है उस दोष से ही प्रकृति बनती है ॥ ३ ॥

वातादि दोषत्रय से हीन, मध्य और उत्तम ये तीन प्रकृति होती है। गर्भाधान काल में गर्भजनक शुक्र और शोणित में वायु का उत्कर्ष रहने से हीन प्रकृति, पित्त के उत्कर्ष से मध्य-प्रकृति और कफ के उत्कर्ष से उत्तम प्रकृति होती है। दोष की समता रहने से सम-प्रकृति बनती है। और भी शुक्र और शोणित में दो दो दोष के उत्कर्षता रहने से अपर तीन प्रकार की मिश्र-प्रकृति होती है। समुदाय में सातप्रकार की प्रकृति होती है। इस के बीच में समप्रकृति श्रेष्ठ और द्विदोष-प्रकृति गर्हित जानना ॥ ४ ॥

विष प्राणनाशक होने से भी विष में उत्पन्न कीट

तद्वत् प्रकृतयो मर्त्यं शक्नुवन्ति न बाधितुम् ॥ ५ ॥

तत्र जागरूकः शीतद्वेषी दुर्भगः स्तेनो मत्सर्यनार्यो गान्धर्वचित्तः स्फुटितकरचरणोऽतिरूक्षश्मश्रुनखकेशः क्रोधी नखदन्तखादी च भवति ॥ ६ ॥

अधृतिरदृढसौहृदः कृतघ्नः कृशपरुषो धमनीततः प्रलापी ।
द्रुतगतिरटनोऽनवस्थितात्मावियदपि गच्छति स संभ्रमेण सुप्तः ॥७

अव्यवस्थितमतिश्चलदृष्टिर्मन्दधनरत्नसंचयमित्रः ॥ ८ ॥

जैसे विष से नहीं मरता ऐसे ही दूषण-स्वभाव प्रमाणाधिक दोष जन्मादि में शुक्रार्तवस्थ होनेपर भी उस से शरीर की उत्पत्ति होती है अर्थात् प्रकृति-दोष से शरीरोत्पत्ति की बाधा नहीं होती है ॥ ५ ॥

वात-प्रकृति मनुष्य अतिजागरणशील, शीतद्वेषी, कुत्सित, चोर, मात्सर्यशील, अनार्य, गीतादिप्रिय, स्फुटित-करचरण, अतिरूक्ष, दाढी, केश, और नखवाले, क्रोधालु तथा नखदन्तखादी होता है ॥ ६ ॥

वातिक-प्रकृति-मनुष्य अधीर, अस्थायीमित्रत्व, कृतघ्न, कृश, परुष (रूखापन), शिराव्याप्तदेह असंबन्ध वाक्यभाषी, द्रुतगमनशील, भ्रमणशील और चंचलचित्त होता है। वह स्वप्न में आकाश में गमन करता है ॥ ७ ॥

सुप्तः सन् कनकपलाशकर्णिकारान्
संपश्येदपि च हुताशविद्युदुल्का ॥ १२ ॥

न भयात् प्रणमेदनतेष्वमृदुः प्रणतेष्वपि सान्त्वनदानरुचिः ।
भवतीह सदा व्यथितास्यगतिः स भवेदिह पित्तकृतप्रकृतिः ॥१३॥

भुजङ्गोलूकगन्धर्व-यक्षमार्जारवानरैः
व्याघ्रर्क्षनकुलानूकैः पैत्तिकास्तु नराः स्मृताः ॥ १४ ॥

है, निगृह्यवक्ता अर्थात् दूसरा का वाक्य उच्छेद कर स्वयं बोलने लगता है, तेजस्वी, संग्राम में दुर्निवारवीर्य होता है और स्वप्न में नागेश्वर, पलाश और कर्णिका वृक्ष तथा अग्नि, विद्युत और उल्क का दर्शन करते हैं ॥१२॥

पित्त-प्रकृति मनुष्य भय से प्रणत नहीं होता है और प्रबल आदमी के पास नरम नहीं होता है और नम्र व्यक्ति को सान्त्वना प्रदान अर्थात् अभय देता है और वह मुखपाक से सदा व्यथित अर्थात् दुःखित होता है ॥ १३ ॥

पित्त-प्रकृति मनुष्यगण भुजङ्ग (सांप) उल्लू, गन्धर्व, यक्ष, बिल्ली, बानर, व्याघ्र, भालू, नेवला प्रभृति के माफ़िक़ प्रकृतिविशिष्ट होते हैं ॥ १४ ॥

पित्तं वह्निर्वह्निजं वा तदस्मात् पित्तोद्रिक्तस्तीव्रतृष्णोबुभुक्षु: ।
गौरोष्णाङ्गस्ताम्रहस्ताङ्घ्रिवक्त्र: शूरो मानी पिङ्गकेशोऽल्परोमा १५

दूर्वेन्दीवरनिस्त्रिंशार्द्रारिष्टशरकाण्डानामन्यतमवर्ण:
सुभग: प्रियदर्शनो मधुरप्रिय: कृतज्ञो धृतिमान् सहिष्णु-
रलोलुप बलवांश्चिरग्राही दृढवैरश्च भवति ॥ १६ ॥

श्लेष्मा सोम: श्लेष्मलस्तेन सौम्यो गूढस्निग्धश्लिष्टसंध्यस्थिमांस:।

पित्त स्वयं अग्नि अथवा अग्नि से उत्पन्न है अतएव पित्तोद्रिक्त व्यक्ति तीव्र, उष्ण, बुभुक्षु, गौरवर्ण और उष्णाङ्ग होता है तथा उसको हस्तपद और चक्षु ताम्रवर्ण होता है ये सब मनुष्य मानी पिङ्गलकेश और अल्परोमा होते हैं ॥ १५ ॥

श्लेष्मा-प्रकृति मनुष्यों के वर्ण दूर्वादल नीलकमल, शाणित शस्त्र, आर्द्र अरिष्ट तथा शरकाण्ड इनके बीच में किसी के माफिक वर्णविशिष्ट होते हैं । श्लेष्मा-प्रकृति मनुष्य सुन्दर आकृतिविशिष्ट, प्रियदर्शन, मधुररसप्रिय कृतज्ञ, धृतिमान्, सहिष्णु, निर्लोभी, बलवान्, चिरग्राही अर्थात् सहसा भलाबुरा कोई विषय ग्रहण नहीं करता, और दृढ़बैर होता है ॥ १६ ॥

श्लेष्मा सोम पदार्थ है इसलिये कफप्रकृति व्यक्ति

क्षुत्तृट् दुःखक्लेशधर्मैरतप्तो बुद्ध्या युक्तः सात्विकः सत्यसन्धः ॥१७॥
स्मृतिमानभियोगवान् विनीतो न च बाल्येऽप्यतिरोदनो न लोलः ।
तिक्तं कषायं कटुकोष्णरूक्षमल्पं स भुङ्क्ते बलवांस्तथापि ॥ १८ ॥

शुक्लाक्षः स्थिरकुटिलातिनीलकेशो
लक्ष्मीवान् जलदमृदङ्गसिंहघोषः ।
सुप्तः सन् सकमलहंसचक्रवाकान्

सौम्यावयवविशिष्ट होते हैं इन लोगों का सन्धि, अस्थि और मांस गूढ़, चिकना और संश्लिष्ट होता है। ये सब लोग प्यास, दुःख, सन्ताप और क्लेश से सन्तप्त नहीं होते हैं कफप्रकृति व्यक्ति—बुद्धिमान्, सात्विक और सत्यप्रतिज्ञ होते हैं ॥ १७ ॥

श्लेष्मिक-प्रकृति मनुष्यगण स्मृतिमान्, अभियोगवान्, और विनीत होते हैं । ये सब लोग बाल्यावस्था में अतिरोदनशील और अतिलोभी नहीं होते हैं ये सब लोग तिक्त, कषाय, कटु, उष्ण, रूक्ष और थोड़ा भोजन करते हैं तथापि बलवान् होते हैं ॥ १८ ॥

श्लेष्म-प्रकृति मनुष्य के नेत्र सफेद, केश दृढ़, कुञ्चित और अतिनीलवर्ण होते हैं। वह लक्ष्मीवान् होता है और उसको कण्ठस्वर मृदङ्ग और केशरी के

संपश्येदपि च जलाशयान् मनोज्ञान् ॥ १९ ॥
रक्तान्तनेत्रः सुविभक्तगात्रः स्निग्धच्छविः सत्वगुणोपपन्नः ।
क्लेशक्षमो मानयिता गुरूणां ज्ञेयो बलासप्रकृतिर्मनुष्यः ॥२०॥
दृढ़शास्त्रमतिः स्थिरमित्रधनः परिगण्य चिरात् प्रददाति बहु ।
परिनिश्चितवाक्यपदः सततं गुरुमानकरश्च भवेत्स सदा ॥२१॥
ब्रह्मरुद्रेन्द्रवरुणैः सिंहाश्वगजगोवृषैः ।

माफ़िक़ गम्भीर होता है और स्वप्न में कमल-हंस-चक्र-वाक-शोभित जलाशय को दर्शन करता है ॥ १९ ॥

श्लेष्म-प्रकृति के मनुष्य का नेत्रप्रान्त रक्तवर्ण होता है गात्रावयव सकल सुविभक्त होता है वह स्निग्ध-कान्ति, सत्वगुणान्वित, क्लेशक्षम और गुरुजन का सन्मान करता है ॥ २० ॥

कफप्रकृति मनुष्य का मति दृढ़ा होती है और मित्रता और धन स्थिर रहता है, दीर्घकाल परिगणन अर्थात् विवेचना करके बहुत दान करते हैं, जिसको जो बचन देते हैं उसको पालन करते हैं और सर्वदा गुरु की आज्ञा मानते हे ॥ २१ ॥

श्लेष्म-प्रकृति के मनुष्यों की प्रकृति ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वरुण और सिंह, अश्व, गज, गो, वृष तथा गरुड़ और

ताद्यंहंससमानूका: श्लेष्मप्रकृतयो नरा: ॥ २२ ॥
द्वयोर्वा तिसृणां वापि प्रकृतानान्तु लक्षणै: ।
ज्ञात्वा संसर्गजा वैद्य: प्रकृतिरभिनिर्दिशेत् ॥ २३ ॥
प्रकोपो वान्यथाभाव: क्षयो वा नोपजायते ।
प्रकृतीनां स्वभावेन जायते तु गतायुष: ॥ २४ ॥
विषजातो यथा कीटो न विषेण विपद्यते ।
तद्वत् प्रकृतयो मर्त्यं शक्नुवन्ति न बाधितुम् ॥ २५ ॥

हंस इनमें से किसी के माफ़िक प्रकृतिविशिष्ट होते है ॥ २२ ॥

दो प्रकृति के मिलित लक्षणों से द्वन्द्वज-प्रकृति और तीन प्रकृति के मिलित लक्षणों से सान्निपातिक-प्रकृति को जानना चाहिये ॥ २३ ॥

प्रकृति समूह का प्रकोप, अन्यथाभाव अथवा क्षय स्वभाव से ही नहीं होता अगर कभी भी ये सब संघटित हो तो जानना चाहिये कि मृत्यु के लिये ही ये सब होता है ॥ २४ ॥

विष से उत्पन्न हुआ कीट जैसे विष से विनष्ट नहीं होता है ऐसे ही प्रकृति भी मनुष्य को दु:ख देने को समर्थ नहीं होती है ॥ २५ ॥

प्रकृतिमिह नराणां भौतिकं केचिदाहु:
पवनदहनतोयै: कीर्त्तितास्तास्तु तिस्रः ।
स्थिरविपुलशरीर: पार्थिवश्च क्षमावान्
शुचिरथ चिरजीवी नाभस: खैर्महद्भि: ॥ २६ ॥

सत्वं रजस्तम इति गुणा: प्रकृतिसम्भवा: ।
निवध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥ २७ ॥

तत्र सत्वं निर्मलत्वात् प्रकाशकमनामयम् ।

कोई २ आचार्य्य प्रकृति को भौतिक मानते हैं वायु, अग्नि और जल से मनुष्य की तीन प्रकार की प्रकृति होती है—यथा वातिक-प्रकृति, तैजस-प्रकृति और आप्य प्रकृति तथा आकाश से दो प्रकार की प्रकृति होती है । वायु, पित्त और कफ के लक्षणों से प्रथम तीन प्रकार की प्रकृति जानना । पार्थिव-प्रकृति के मनुष्य का शरीर दृढ़ और बड़ा होता है और वह क्षमावान् होते हैं । नाभसप्रकृति के मनुष्य पवित्र और दीर्घजीवी होते हैं और उसको नासाकर्णादिकों के छिद्र सकल विपुल अर्थात् बड़ा होता है ॥ २६ ॥

गुण प्रकृति से ही उत्पन्न होते हैं ये सब गुण देहाभ्यन्तरस्थ क्षेत्रज्ञ पुरुष को बन्धन करते हैं ॥ २७ ॥

सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ: ॥ २८ ॥
रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम् ।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसंगेन देहिनम् ॥ २९ ॥
तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभि स्तन्निबध्नाति भारत ॥ ३० ॥
यजन्ते सात्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः ।
प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः ॥ ३१ ॥

गुणत्रय के बीच में सत्व नामक गुण निर्मल होने के कारण वह गुण प्रकाशक और शान्त्व होता है। हे अनघ ! वह भी बन्धनकर है सुखसङ्ग और ज्ञान-सङ्ग इन दोनों से क्षेत्रज्ञ पुरुष को आबद्ध करता है। मैं ज्ञानी पुरुष इत्याकार जो अभिमान वह भी सत्वगुण से उत्पन्न होता है ॥ २८ ॥

रजोगुण कामना और आसक्ति उत्पन्न करनेवाला है ! हे कौन्तेय। इसी से कर्म में आसक्त होकर देहीको बन्धन करता है ॥ २९ ॥

तमोगुण अविद्यामूलक है। देहीमात्र का ही मोहकर जानना है, भारतनन्दन। वह प्रमाद, आलस्य और निद्रा को लाता है और उस से ही देही को निबद्ध करता है ॥ ३० ॥

सात्विक-प्रकृति मनुष्यगण देवताओं को, रजोगुण-

आयुःसत्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्द्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥३२॥
कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टाः दुःखशोकामयप्रदाः ॥ ३३ ॥
यातयामं गतरसं पूतिपर्य्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ ३४ ॥

वाले पुरुष यक्ष और राक्षसों को और तामस पुरुष प्रेत और भूतादिकों की पूजा करते हैं ॥ ३१ ॥

रसयुक्त, चिकना और मनोहर भक्ष्य द्रव्य ही सात्विक पुरुषों का प्रिय आहार है उससे उसका आयु उत्साह, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति बढ़ती है ॥ ३२ ॥

अतिकटु, अतिअम्ल, अतिलवण, अतिउष्ण, अतिरूक्ष और अतिविदाहि भक्ष्य द्रव्य ही राजस पुरुषों के प्रिय आहार जानना और वह सब आहार उसको दुःख, शोक और रोग को उत्पन्न करदेता है ॥ ३३ ॥

जो खाद्य बहुत समय पहिले ही पका हुआ है, और जो सूखा हुआ है, जो दुर्गन्धयुक्त, बासी, भुक्ताव-शिष्ट और अपवित्र ये सब आहार तामस-प्रकृति आदमियों को प्रिय होता है ॥ ३४ ॥

ब्रह्म-महेन्द्र-वरुण-कुबेर-गन्धर्व-यम-ऋषि-कायपुरुषाः सात्विकाः। असुर-सर्प-शकुन-राक्षस-पिशाच-प्रेत-कायपुरुषाः राजसाः, पशु-मत्स्य-वनस्पति-कायपुरुषाः तामसा इति भाषन्ते कुशलाः तेषां लक्षणानि ग्रंथगौरवभयान्न लिखितानीति ॥ ३५ ॥

ब्रह्म, महेन्द्र, वरुण, कुबेर, गन्धर्व, यम, और ऋषिकाय पुरुष सात्विक-प्रकृतिविशिष्ट होते हैं; असुर, सर्प, शकुन, राक्षस, पिशाच और प्रेतकायपुरुष राजसिक-प्रकृति के होते हैं; पशु, मत्स्य और वनस्पतिकाय पुरुष को कुशल वैद्य तामसिक कहते हैं। इन सब प्रकृति-विशिष्ट पुरुषों के अपने २ लक्षण ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से यहां पर नहीं लिखा है ॥ ३५ ॥

वङ्ग-देशान्तर्गत-वरिशाल-मण्डलस्थित-खलिशाकोटा-ग्रामनिवासि-वैद्याचार्य्य-कविराज श्रीप्रसन्नकुमार कविरत्नात्मज---वाराणसी---हिन्दूविश्वविद्यालयायुर्वेदाध्यापक कविराज-श्रीनिशिकान्त वैद्यशास्त्रि-संकलित शरीर-विज्ञाने प्रकृतिविज्ञानीयं नाम पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ॥

प्रशस्तिपत्रम् ।

"श्रीमता निशिकान्तेन भिषजा वैद्यशास्त्रिणा ।
वाराणसी-हिन्दुविश्वविद्यौकोगुरुणा सता ॥
कृतं 'शारीर-विज्ञानम्' अनुवादात्मकं नवम् ।
दृष्ट्वा बहुविधज्ञानदीपकं मुदिता वयम् ॥
आयुर्वेदनिगूढार्थबुभुत्सूनां शुभावहम् ।
एतत्पाठं विशेषेण ज्ञानदं मन्महे सताम् ॥
एतद्ग्रन्थप्रणेतासौ चिरं जीवतु कीर्तिभाक् ।
निशिकान्तो निशाकान्त इव चन्द्रिकयोज्ज्वलः ॥"

श्रीपञ्चाननतर्करत्न देवशर्मप्रदत्तम् ।

१०।१०।२८